* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

# कल्याण

मूल्य १० रुपये




कुरुक्षेत्रमें भगवान् कृष्ण एवं अर्जुन

कालभैरव-दर्शन-महिमा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

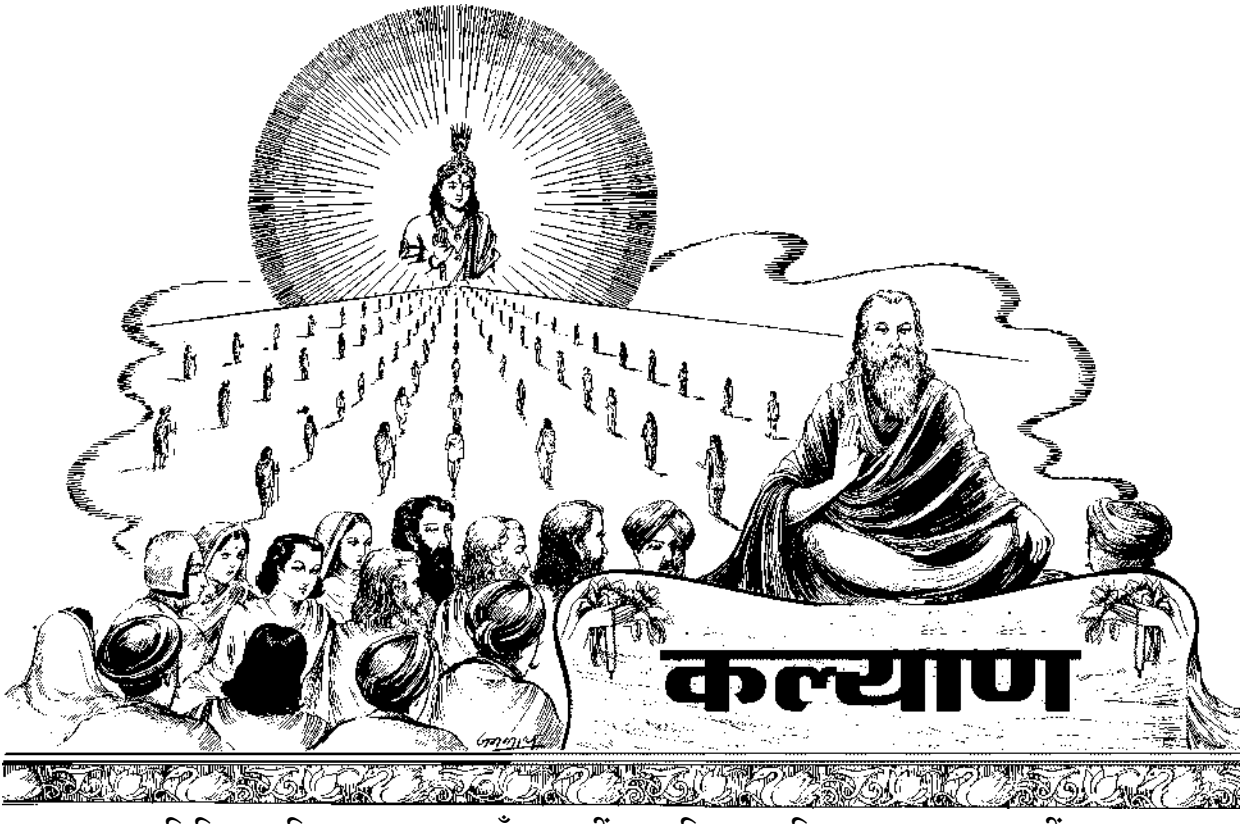


**जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥**
**तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥**

[रामचरितमानस, बालकाण्ड]


वर्ष ९७ | गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, दिसम्बर २०२३ ई० | संख्या १२

पूर्ण संख्या ११६५


# कालभैरव-दर्शन-महिमा

**यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धितः।**
**तत्सर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात्॥**
**अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुभिस्त्वघम्।**
**तत्सर्वं विलयत्याशु कालभैरवदर्शनात्॥**

**[ स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ३१। १४४-१४५ ]**

कालभैरवके दर्शनसे जो कुछ अशुभ कर्म मानवबुद्धिसे किया गया हो, वह सब भस्म हो जाता है। इन कालभैरवके दर्शन करनेसे [काशीमें] अनेक जन्मका संचित समस्त जन्तुओंका अघसमूह अतिशीघ्र ही विलीन हो जाता है।

**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥**

(संस्करण १,८०,०००)

**कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, दिसम्बर २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक १२**

# विषय-सूची


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १- कालभैरव-दर्शन-महिमा | ३ |
| २- सम्पादकीय | ५ |
| ३- कल्याण | ६ |
| ४- श्रीकृष्णका अर्जुनको गीताकी महिमा बताना **[ आवरणचित्र-परिचय ]** | ७ |
| ५- सर्वस्व देकर भी भगवत्प्रेम प्राप्त करें (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) | ८ |
| ६- संसारका वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) | ९ |
| ७- संकटमें भी अतिथि-सत्कार **[ प्रेरक-प्रसंग ]** | १० |
| ८- वह दिन कब आयेगा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) | ११ |
| ९- संस्कारोंकी रक्षा **[ बोधकथा ]** | १२ |
| १०- स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके अन्तिम उद्गार | १३ |
| ११- मातृभूमिकी सेवा **[ बोधकथा ]** | १३ |
| १२- अमृत-बिन्दु **[ साधकोंके प्रति ]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) | १४ |
| १३- श्रीरामके चरित्रकी प्रासंगिकता (डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त) | १५ |
| १४- त्रिपुरवधका आध्यात्मिक रहस्य (पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विद्यानिधि) | १७ |
| १५- वृन्दावनसेवी साधकोंकी दृष्टिमें श्रीवृन्दा (डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा) | १९ |
| १६- सनातन-धर्मके ज्ञान, ग्रहण और प्रसारकी आवश्यकता **[ श्रीभाईजी ]** | २२ |
| १७- पीड़ितकी सेवा करना ही सच्ची उपासना है **[ बोधकथा ]** | २४ |
| १८- अष्टमूर्तिस्तव | २५ |
| १९- ओरछाधाम—जहाँ विराजे हैं राजाराम **[ तीर्थ-दर्शन ]** (श्रीइन्दल सिंहजी भदौरिया) | २७ |
| २०- आहार-विज्ञान **[ आरोग्य-चर्चा ]** (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़) | ३० |
| २१- भक्त जोग परमानन्द **[ सन्त-चरित ]** | ३२ |
| २२- 'अब तो आँखें खोल' **[ कविता ]** (आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश') | ३३ |
| २३- गो-महिमा **[ गो-चिन्तन ]** (श्रीमद्जगद्गुरु द्वाराचार्य श्रीमलूक-पीठाधीश्वर स्वामी श्रीराजेन्द्रदास देवाचार्यजी महाराज) | ३४ |
| २४- जाम्भोजीकी गोसेवा (श्रीमाँगीलालजी बिश्नोई 'अज्ञात', एम०ए०, बी०एड०) | ३५ |
| २५- सुभाषित-त्रिवेणी | ३६ |
| २६- व्रतोत्सव-पर्व **[ माघमासके व्रत-पर्व ]** | ३७ |
| २७- व्रतोत्सव-पर्व **[ फाल्गुनमासके व्रत-पर्व ]** | ३८ |
| २८- कृपानुभूति | ३९ |
| २९- पढ़ो, समझो और करो | ४२ |
| ३०- मनन करने योग्य | ४५ |
| ३१- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची | ४६ |


## चित्र-सूची


| | | |
|---|---|---|
| १- कुरुक्षेत्रमें भगवान् कृष्ण एवं अर्जुन | (रंगीन) | आवरण-पृष्ठ |
| २- कालभैरव-दर्शन-महिमा | ( ,, ) | मुख-पृष्ठ |
| ३- कुरुक्षेत्रमें भगवान् कृष्ण और अर्जुन | (इकरंगा) | ७ |
| ४- शुक्राचार्यद्वारा भगवान् शिवका स्तवन | ( ,, ) | २५ |
| ५- ओरछाधाम स्थित श्रीराजाराम-मन्दिर | ( ,, ) | २७ |


**जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥**
**जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥**
**जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥**

**एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे**
**पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे**
**विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra**

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़,** सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
**केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित**

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
**Online सदस्यता हेतु gitapress.org** के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
**'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org** के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

॥ श्रीहरिः ॥

सहज शब्दका सीधा अर्थ है, जो साथ जन्मा है—सह+ज। जरा ठहरकर देखें, वह क्या है, जो इस शरीरके साथ जन्मा है। वह है—हमारा स्वरूप, हमारा स्वभाव, हमारा स्वास्थ्य।

प्रायः हम इनमेंसे किसीकी खोज और परवाह नहीं करते और सुनी-सुनायीको ढूँढ़ने-पाने निकल पड़ते हैं।

कभी दैनिक जीवनकी आपाधापीसे थोड़ा ठहरकर विचार करें—

- मैं कौन हूँ? क्या यह शरीर मैं हूँ? क्या ये मन-विचार-चिन्ताएँ मैं हूँ? याद रखें—जो 'मेरा' है, वह 'मैं' नहीं हूँ।
- इन बीते वर्षोंमें मैंने अपने शरीर-संसारसे हटकर कभी क्षणभर भी अपने स्वयंसे मिलनेका प्रयत्न किया है? सभी सत्प्रयत्नोंमें भगवन्नामका आश्रय और भगवत्कृपापर विश्वास कल्याणकारी है।

—सम्पादक

# कल्याण

***याद रखो***—विषयासक्ति या विषयवासनाका अभाव स्थान, वेष या नाम बदलनेसे अथवा बाहरसे जीवनकी चर्या बदलनेसे ही नहीं होता। इसके लिये विषयोंमें मनकी अनासक्ति और वासनाशून्यता आवश्यक है। जो मनुष्य केवल बाहरसे त्यागका स्वाँग बनाकर अन्दर-ही-अन्दर विषयवासनाका पोषण करता है, वह संसारको तो धोखा देता ही है, स्वयं भी बड़ा धोखा खाता है।

***याद रखो***—त्यागकी आड़में जो भोगवासना रहती है, वह बड़ी भयानक होती है। प्रत्यक्ष भोगी मनुष्यको सभी लोग भोगी जानते हैं, वह स्वयं भी अपनेको भोगी समझकर त्यागी होनेका अभिमान नहीं करता, पर जो अपनेको त्यागी मानता है और दुनियाको भी कहता है कि सब उसे त्यागी समझें तथा जिसके भीतर विषयासक्ति और विषयवासना बनी रहती है, वह त्यागाभिमानी मनुष्य बहुत गहरे पतनके गड्ढेमें गिरता है। उसकी विषयवासना विभिन्न विपरीत मार्गोंसे निकल-निकलकर अपनी पूर्तिके लिये प्रयास करती है और फलस्वरूप वह त्याग, वैराग्य, योग, भक्ति, प्रेम, ज्ञान और विज्ञानका स्वरूप विकृत करके, उनको कलंकित करके बुरे-से-बुरा आदर्श समाजके सामने रखता है।

***याद रखो***—तुम यदि अपनेको सचमुच त्यागी समझते हो और त्यागकी ही महिमा गाते हो, पर साथ ही दूसरोंके भोगपदार्थोंको, उनकी आराम देनेवाली मोटरोंको, उनके सुन्दर भवनों तथा महलोंको, उनके मान-सम्मानको, उनके कीर्ति-यशको, उनकी पूजा-प्रतिष्ठाको, उनके सेवक-शिष्योंको और उनके ऐश्वर्य-वैभवको देखकर ईर्ष्या करते हो, तुम्हारा मन ललचा उठता है, तुम उनको सौभाग्यशाली समझते हो और वैसा सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे मनमें वासना जाग उठती है, तो निश्चय समझो कि तुम उन भोगियोंसे भी बुरे हो, जो बेचारे सहज भोगलिप्सामें लगे रहकर प्रत्यक्ष भोगोंका सेवन-भजन करते रहते हैं। उनको भोगके सीधे मार्गपर चलना है; परंतु तुम्हें तो अपने त्यागका वेश—त्यागका रूप बनाये रखते हुए भोगोंको प्राप्त करने और भोगनेका कुटिल प्रयास करना पड़ता है। इसके लिये तुम्हें दम्भ, छल, कपटका आश्रय लेना पड़ता है, शास्त्रके शब्दोंको तोड़-मरोड़कर अपने अनुकूल अर्थ करके उनका दुरुपयोग करना पड़ता है, अपनी वासनाके समर्थनमें परोपकार, सेवा, भगवत्सेवा, धर्मप्रचार, भक्ति-ज्ञानप्रसार और पवित्र लोकसेवा तथा विश्व-कल्याणका नाम लेकर, उनके झण्डे बनाकर, उनके नारे लगाकर, विविध संस्थाओंका निर्माणकर अपने-आपको मोहके प्रबल पाशोंमें बँधा देना पड़ता है। तुम कहते हो—हम सदाचारका, सद्भक्तिका, सद्भावका, ज्ञान-भक्तिका, गीता-रामायणका और समाज तथा विश्वकी मंगलपद्धतिका प्रचार करते हैं; पर तुम करते हो अपना प्रचार, अपने मिथ्या नाम-रूपकी प्रतिष्ठा तथा महिमाका प्रचार, भगवान्‌के पवित्र आसनपर अपने जड़ शरीर और मिथ्या नामको प्रतिष्ठितकर भगवान्‌के असत्कारका प्रसार एवं मिथ्या नाम-रूपकी महिमाका इतिहास लिख-लिखाकर ज्ञानके नामपर प्रत्यक्ष अज्ञानका विस्तार।

***याद रखो***—इससे तुम अपना घोर पतन करते हो। तुम भगवान्‌को धोखा नहीं दे सकोगे। स्वयं ही मानव-शरीरके परम फलसे वंचित रह जाओगे और त्यागके नामपर भोगका प्रचार करने जाकर, भगवान्‌के स्थानपर अपनी प्रतिष्ठा-पूजाका आयोजन करने जाकर अन्तमें बड़ा पश्चात्ताप करोगे; पर फिर कोई उपाय नहीं रह जायगा। इससे इस प्रकारकी चेष्टासे अपनेको तुरन्त हटा लो और चुपचाप भजन करनेमें—भगवान्‌के स्वरूप, गुण और तत्त्वके तथा उनकी पवित्र लीला एवं मधुर नामोंके स्मरण, चिन्तन और कीर्तनमें जीवनको लगा दो।

***याद रखो***—तुम यदि भगवान्‌के सच्चे भक्त हो जाओगे, परमात्माके स्वरूपको जानकर परमात्म-स्वरूपको उपलब्ध कर लोगे तो तुम्हारे द्वारा संसारका परम कल्याण—तुम्हारे मनमें कल्याण-कामनाका अभिमान न रहनेपर भी, तुम्हारे प्रयास न करनेपर भी अपने-आप होगा। तुम संसारके परम कल्याणके सहज कारण हो जाओगे। तुम तरन-तारन बन जाओगे। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

# श्रीकृष्णका अर्जुनको गीताकी महिमा बताना

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा। अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा। यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

तुझे यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश किसी भी कालमें न तो तपरहित मनुष्यसे कहना चाहिये, न भक्तिरहितसे और न बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही कहना चाहिये तथा जो मुझमें दोषदृष्टि रखता है, उससे भी कभी नहीं कहना चाहिये। जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। मेरा उससे बढ़कर प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा मेरा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं। तथा जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा—ऐसा मेरा मत है। जो पुरुष श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टिसे रहित होकर इस गीताशास्त्रका श्रवण करेगा, वह भी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम कर्म करनेवालोंके श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होगा। पार्थ! क्या मेरे द्वारा कहे हुए इस उपदेशको तूने एकाग्र चित्तसे श्रवण किया? और धनंजय! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया?

**तब अर्जुनने कहा**—अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है; अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घटी इस घटनाका वर्णन करते हुए संजय राजा धृतराष्ट्रसे कहते हैं—इस प्रकार मैंने श्रीवासुदेवके और महात्मा अर्जुनके इस अद्‌भुत रहस्ययुक्त, रोमांचकारक संवादको सुना। श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योगको अर्जुनके प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रत्यक्ष सुना है। हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अद्‌भुत संवादको पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। राजन्! श्रीहरिके उस अत्यन्त विलक्षण रूपको भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् आश्चर्य होता है और मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। हे राजन्! [मेरा तो यह मानना है कि] जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है।

# सर्वस्व देकर भी भगवत्प्रेम प्राप्त करें

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

एक बात बहुत महत्त्वकी है। भगवान्‌की शरण ले लेनेसे फिर अपनेमें दुर्गुण-दुराचार आ ही नहीं सकते। जैसे सूर्यकी शरण ले लेनेसे अन्धकार और शीत पास आ ही नहीं सकते, इसी प्रकार भगवान् जिनके हृदयमें विराजमान हैं, वहाँ दुर्गुण-दुराचार आ ही नहीं सकते, सद्‌गुण-सदाचार आते हैं। सूर्यके आश्रयमें गर्मी और प्रकाश स्वाभाविक आते हैं—ऐसे ही भगवान्‌की शरण लेनेपर बिना प्रयास स्वाभाविक ही सद्‌गुण-सदाचार आ जाते हैं, दुराचार-दुर्गुण आ ही नहीं सकते। ऐसा भाव, दृढ़ निश्चय परमात्माके आश्रयसे ही आते हैं। यदि दुराचार-दुर्गुणके भाव आयें, तो 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारनेके साथ ही चले जायँगे। शरणागतिकी कमीके कारण, भूल या मान्यताके कारण ऐसा प्रतीत होने लगे कि दुर्गुण-दुराचारके भाव आ रहे हैं तो 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारना चाहिये। भगवान्‌की शरण हो जानेपर चिन्ता, भय, शोक, दुर्गुण, दुराचारका मूलसहित नाश हो जाता है। सद्‌गुण, सदाचार, शान्ति और आनन्द स्वभावसिद्ध हो जाते हैं।

भगवान्‌की शरण लेनेपर ये सब हो जायँ इसमें तो कहना ही क्या है, भगवान्‌के प्रेमियोंके संगसे ही ये हो जाते हैं। **भगवत्संगिसंगिनाम्** उनकी शरणसे, प्रेमसे, उनकी दयासे यह सब हो सकता है। भगवान्‌की दयाके तत्त्वको जो समझ जाता है, उसमें दया, गम्भीरता, शान्ति, सरलता अपने-आप आ जाते हैं। आनन्द, शान्ति समाती नहीं। हमलोग लायक होंगे तो प्रभु स्वतः ही प्रकट हो जायँगे। जब खूब प्रेम होता है, तब कहींसे भी कीर्तनकी ध्वनि आती है तो हृदयमें प्रेमकी जागृति हो जाती है। जैसे कामिनीकी झंकारसे कामीके हृदयमें कामकी जागृति हो जाती है।

साधु-महात्माके दर्शनसे नेत्र खिल जाते हैं, जैसे गुलाबका पुष्प। नेत्र चूने लग जाते हैं, यह नेत्रोंका झूमना है। हमलोग तो प्रेमके नामपर यत्किंचित् चेष्टा करते हैं, परंतु वास्तवमें असली प्रेम तो अलौकिक है। प्रेम अनिर्वचनीय कहा गया है। वहाँ वाणीकी, मनकी पहुँच नहीं है, बुद्धि और मन उसको छू सकते हैं, पर उसका पता नहीं लगा सकते।

जो प्रेमसे घायल हो जाता है, उसकी कोई औषधि नहीं। भगवत्प्रेमसे घायल हो जाना चाहिये। स्वप्नमें भी भगवान् मिल जायँ तो उसके आनन्दकी क्या सीमा है!

## एक बड़ी गोपनीय बात

स्वप्नमें भगवान्‌के मिलनेपर और जाग्रत्‌में भगवान्‌के मिलनेमें जो आनन्द होता है, उन दोनोंमें बहुत अन्तर होता है। वर्तमानमें स्त्रीका दर्शन और भाषण होता है, उसीके अनुसार स्वप्नमें होता है, पर भगवान् अबतक प्रत्यक्ष तो मिले नहीं। स्वप्नमें जिस भावनासे भगवान् दीखते हैं, जाग्रत्‌में वास्तवमें मिलनेपर वे बहुत ही विलक्षण दीखते हैं। जिस पदार्थका हमने अनुभव नहीं किया है, उसके स्वप्नसे वह असली वस्तु विलक्षण होती है।

हमलोगोंको प्रेम करना सीखना चाहिये। एक दूसरेसे उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ाना चाहिये। इतना प्रेम बढ़ाना चाहिये कि बाध्य होकर प्रभुको आना पड़े। भगवान्‌के निमित्तसे हमलोग जो प्रेम बढ़ायेंगे, उसका फल भगवान् देंगे। भगवान् प्रेमीका त्याग नहीं कर सकते। उन्हें प्रेमियोंकी बड़ी आवश्यकता है, प्रेमी बहुत कम मिलते हैं, मिलते ही नहीं। सर्वस्व देनेपर यदि एक रत्ती प्रेम मिले तो सर्वस्व दे डालना चाहिये, वही सच्चा पुरुष है।

रत्नका वास्तविक मूल्य जौहरी ही जानता है। लाख रुपयोंके हीरे-माणिकका भीलनी चार पैसा नहीं देती, क्योंकि वह सोचती है कि ये काँचके टुकड़े क्या काम आयेंगे।

एक रत्ती भगवत्प्रेमके लिये जौहरीलोग सर्वस्व दे डालते हैं। जो जितना कम मूल्य देना चाहता है, वह उतना ही भगवान्‌के प्रेमके तत्त्वको नहीं जानता।

जिस क्रियाके करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो, वही क्रिया वह करता है। स्वार्थके त्यागसे प्रेम मिलता है। भगवत्प्रेमीके अनुकूल बननेमें ही उसे आनन्द होता है।

# संसारका वास्तविक स्वरूप

( ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज )

सम्पूर्ण व्यावहारिक प्रपंच स्वप्नवत् है, फिर भी अबाधित चिरकालानुवृत्त होनेके कारण उसमें दृढ़ प्रत्यय होता है, अचित् बाधित होनेसे स्वप्नमें इतना दृढ़ प्रत्यय नहीं होता। कभी किसी दीर्घ स्वप्नमें अभिनिवेशाधिक्यसे जागनेपर भय-कम्पादि होता रहता है, सहसा उसकी सत्तामें अविश्वास नहीं होता। प्राणियोंके भोगारम्भक शुभाशुभ अदृष्ट भी कुछ प्रत्यय-दार्ढ्यमें हेतु हो जाते हैं। यह बात अलग है कि सब स्वप्न एक-से नहीं होते, उनकी विचित्रता स्पष्ट ही है। भ्रममें कोई भी बात असम्भव नहीं है। समुद्रमें बड़वानलके समान जलमें अग्नि, आकाशमें नगर, शिलामें पंकज, शिलाके भीतर सृष्टि, शिलाओंका उड़ना आदि भी सम्भव होते हैं। यन्त्रपुमान्के समान अचेतनका भी कर्म करना दृष्ट है। स्वप्ननिमग्नबुद्धि प्राणी स्वप्नकी स्थिरता और सत्यताका जैसे अनुभव करता है, वैसे ही सर्गनिमग्नबुद्धि प्राणी सर्गको सत्य और स्थिर देखता है। स्वप्नसे स्वप्नान्तरगमनके समान ही सर्गभ्रमण भी होता है।

इसी सम्बन्धमें 'योगवाशिष्ठ'-का भिक्षूपाख्यान है। समाधिसम्पन्न भिक्षुके शुद्ध चित्तके संकल्पसे लीलया एक जीवट नामक सामान्य मनुष्य उत्पन्न हुआ। वही स्वप्नमें अपने-आपको वेदपाठी ब्राह्मण देखने लगा। ब्राह्मणने भी निद्रामें पड़कर स्वप्नमें अपनेको सामन्त देखा। सामन्तने स्वप्नमें अपनेको सम्राट् देखा। सम्राट् स्वप्नमें अप्सरा हो गये। अप्सरा भी स्वप्नमें मृगी बन गयी। मृगी स्वप्नमें लता बन गयी। लता कटकर भ्रमर बन गयी और पद्मिनीमें आसक्त होकर मदान्ध गजद्वारा कमलिनीके साथ ही वह भी नष्ट होकर मदान्ध गज बन गया। गज भी मरकर भ्रमरोंको देखता-देखता भ्रमर हो गया और फिर गजपादसे चूर्णित हो गया। हंसकी भावनासे वही हंस हो गया। हंस मरकर सारस हो गया, सारसने रुद्रको देखकर रुद्र होना चाहा और रुद्र हो गया (यहाँ रुद्रका अर्थ रुद्रसारूप्यप्राप्त रुद्रगण है)। रुद्र होते ही जब सर्वज्ञता आ गयी, तब अपने अनेकानेक जन्मों और स्वप्नोंकी सब कथा उसकी स्मृतिमें आयी। अहो! असत्या ही जगन्मोहिनी माया मरुभूमिमें यद्यपि जलके समान ही है, तथापि कितनी विचित्रता इसमें है। जो मैं प्रथम केवल चिन्मात्र था, वह चित्त बना। गगनादि प्रपंचकी भावना करके जीव बना। फिर भिक्षु, फिर स्वप्नसे स्वप्नमें भटकते हुए कहाँसे कहाँ गया। यह सब भावना और संकल्पके अभ्यासका ही परिणाम है। देहादिप्राप्तिमें भी संग, संकल्प, भावना ही निमित्त होती है। यह भावना आदि विचार करनेपर कुछ भी नहीं ठहरते। इस सम्पूर्ण संसारभ्रमका एकमात्र असंवेदन ही मार्जन है। यह सब विचारकर रुद्रने शयान भिक्षुको जगाया। जागकर तत्त्वज्ञ भिक्षुने विचित्र स्वप्नपरम्पराका स्मरण किया। पुनः दोनों मिलकर जीवटके पास गये। उसे प्रबुद्ध किया। ये सब पृथक्-पृथक् सर्गके ही आकाशमें थे। फिर उन तीनोंने विप्रके संसारमें जाकर उसे जगाया। इस तरह सामन्त, राजा, सुरांगना आदि पूर्वोक्त सभी मिलकर अन्तमें रुद्रभावको प्राप्त हुए। सभी निरावरण चित्स्वरूप होकर अवेदनात्मक मोक्षको प्राप्त हुए।

संवेदन ही सर्ग और बन्ध है, अवेदन ही मोक्ष है। सर्वसाधारणके संकल्पमें अभ्यासाभावसे शक्ति नहीं होती, तथापि एकाग्रतासे दृढ़ संकल्प करनेवाले योगी लोग एक क्षणमें ही अनेक देहोंका निर्माण कर लेते हैं। जैसे क्षीरसागरमें रहते हुए शेषशायी भगवान् अन्यत्र सहस्रों अवतारकार्य करते हैं, वैसे ही सिद्धसंकल्प योगियोंके संकल्पानुसार ही सृष्टिपरम्परा चल पड़ती है। दूसरे प्राणी प्राक्तन शुभाशुभ कर्मानुसारी दृढ़ संकल्पके अनुसार संसारको प्राप्त होते हैं। इस तरह कर्मानुसार सभी जीव एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें भटक रहे हैं। शान्त, निर्विकार ब्रह्मभावका बोध होनेपर प्राणरोध, इन्द्रियरोधके बिना, दृश्य-प्रपंचके अस्तगमनके बिना भी सब कुछ सर्वदा शान्त, शुद्ध, मौन ब्रह्म ही उपलब्ध होता है। प्रयत्नानपेक्ष इसी अवस्थाको सौषुप्त मौन कहा है।

इसमें यथास्थित वस्तुके बोधमात्रसे यथास्थित अनाद्यनन्त उदयास्तवर्जित, आकाशसे भी परम सूक्ष्म, शिलासे भी अनन्त घन, निरवकाश, ठोस, शुद्ध, अमल ब्रह्म अपने आपमें ही स्थित रहता है।

वासनामात्र ही चित्त है। चित्तके अभावमें ही परमपद है। रज्जु-सर्पभ्रमके समान इस संसृतिका विवेकमात्रसे बाध हो जाता है। एकार्थाभ्यास, प्राणरोध, मनोनाश—ये सब संसृतिसमाप्तिमें कारण हैं। प्राणके शान्त होनेपर मन शान्त होता है, मन:स्पन्दके शान्त होनेपर प्राणस्पन्द भी शान्त होता है। ये दोनों आपसमें रथ-रथीके समान हैं। एकके अभावमें दोनोंका ही अभाव हो जाता है। अनन्तात्मतत्त्वका विचार करके उसीका दृढ़ाभ्यास करनेसे मनको ब्रह्माकार बनाना चाहिये। अज्ञान और ज्ञान दोनोंका ही बाध होनेसे अधिष्ठानतत्त्व ही रह जाता है। सम्पूर्ण द्वैत अविद्यामात्र है। अविद्या भी चित्तमात्र है। चित्त भी स्वभासक अधिष्ठानमात्र है। विचारसे क्षणमें जीव अजीव, चित्त अचित्त हो जाता है। मृगतृष्णा-जलके समान ही मन और अहन्तादि संसार उपलब्ध होता है। सब असत् ही है। किंचिन्मात्र विचारसे इसका बाध हो जाता है।

*प्रेरक-प्रसंग—*

## संकटमें भी अतिथि-सत्कार

**मेवाड़के गौरव हिन्दूकुल-सूर्य महाराणा प्रताप अरावलीके वनोंमें उन दिनों भटक रहे थे। उनको अकेले ही वन-वन भटकना पड़ता तो भी एक बात थी, किंतु साथ थीं महारानी, अबोध राजकुमार और छोटी-सी राजकुमारी। अकबर-जैसे प्रतापी शत्रुकी सेना पीछे पड़ी थी। कभी गुफामें, कभी वनमें, कभी किसी नालेमें रात्रि काटनी पड़ती थी। वनके कन्द-फल भी अलभ्य थे। घासके बीजोंकी रोटी भी कई-कई दिनपर मिल पाती थी। बच्चे सूखकर कंकाल हो रहे थे।**

**विपत्तिके इन्हीं दिनोंमें एक बार महाराणाको परिवारके साथ लगातार कई दिनोंतक उपवास करना पड़ा। बड़ी कठिनाईसे एक दिन घासकी रोटी बनी और वह भी केवल एक। महाराणा तथा रानीको तो जल पीकर समय बिता देना था, किंतु बच्चे कैसे रहें? राजकुमार सर्वथा अबोध था। उसे तो कुछ-न-कुछ भोजन देना ही चाहिये। राजकुमारी भी अभी बालिका थी। आधी-आधी रोटी दोनों बच्चों को उनकी माताने दे दी। राजकुमारने अपना भाग तत्काल खा लिया। परंतु राजकुमारी छोटी बच्ची होनेपर भी परिस्थिति समझती थी। छोटा भाई कुछ घंटे बाद भूखसे रोयेगा तो उसे क्या दिया जायगा, इसकी चिन्ता उस बालिकाको भी थी। उसने अपनी आधी रोटी पत्थरके नीचे दबाकर सुरक्षित रख दी, यद्यपि स्वयं उसे कई दिनोंसे कुछ मिला नहीं था।**

**संयोगवश वहाँ वनमें भी एक अतिथि महाराणाके पास आ पहुँचे। राणाने उन्हें पत्ते बिछाकर बैठाया। पैर धोनेको जल दिया। इतना करके वे इधर-उधर देखने लगे। आज मेवाड़के अधीश्वरके पास अतिथिको जल पीनेको देनेके लिये चनेके चार दाने भी नहीं। किंतु उनकी पुत्रीने पिताका भाव समझ लिया। वह अपने भागकी रोटीका टुकड़ा पत्तेपर रखकर ले आयी। अतिथिके सम्मुख उसे रखकर बोली—'देव! आप इसे ग्रहण करें। हमारे पास आपका सत्कार करनेयोग्य आज कुछ नहीं है।'**

**अतिथिने रोटी खायी, जल पिया और विदा हो गया, किंतु वह बालिका मूर्छित होकर गिर पड़ी। भूखसे वह दुर्बल हो चुकी थी। यह मूर्छा उसकी अन्तिम मूर्छा बन गयी। अतिथिके सत्कारमें उसने अपनी आधी रोटी ही नहीं दी थी, अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था।**

# वह दिन कब आयेगा

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

प्यारे नटनागर! तुम्हीं बताओ कि मेरा चिरवांछित वह सुदिन कब आयेगा? दुलारे चितचोर! तुम्हीं कहो कि वह शुभ घड़ी, वह सुहावना सरस समय, वह परम प्रिय अनमोल पल, वह भाग्योदयका मुहूर्त कब होगा, जब ये चिरतृषित नेत्र उस अनूप रूपमाधुरीका पानकर अन्य किसी भी छविको न देख सकेंगे? अहा! वह समय बड़ा ही अनमोल होगा, जब प्रियतमका करोड़ों चन्द्रमाओंको लजानेवाला मोहन मुखड़ा घनश्याम मेघसे निकल पड़ेगा और अपनी विश्वमोहिनी चटकीली चाँदनीसे विश्वको चमका देगा। उस समय कोयल पंचम स्वरसे 'कुहू-कुहू' की ध्वनिसे अपने प्राणाधारको पुकार उठेगी। पपीहा 'पी कहाँ' की रटसे प्रेमिकाको अधीर कर देगा। मोरके शोरसे सहसा हृदयमें चोट लग जायगी। योगी चंचल चितवनसे उस नवीन चन्द्रकी ओर त्राटक लगा लेंगे और प्रकृतिदेवी उस अलौकिक सौन्दर्यकी झाँकीपर थिरक-थिरक नाचने लगेगी।

भक्त-मन-चोर! सच कहना, यह चोरीकी कला तुमने किससे और कब सीखी? सुनते हैं, तुम व्रजललनाओंसे बड़े इठलाते हो,उनका माखन चुरा लेते हो और कोई-कोई तो यहाँतक कहते हैं कि उनका सर्वस्व लूट लेते हो! यदि बात सत्य है, तो क्या मैं भी तुम्हारी इस लूटपाटका एक नवीन पात्र बन सकता हूँ? क्या मैं भी तुमसे कह सकता हूँ कि ऐ अनोखे चोर! मेरा भी 'चित' चुरा लो? क्या मेरी ओरसे तुम्हारा नाम 'मन-चोर' न पड़े?

मेरे राम! वह दिन कब आयेगा, जब मैं भी मुनि-शापसे शिला हो जाऊँगा और तुम्हारे चरण-रज-स्पर्शसे मुझे उस परमानन्दकी प्राप्ति होगी, जिसके लिये योगीजन लाखों वर्षोंतक निराहार रहकर तुम्हारी उपासना किया करते हैं। भव-भयहारी राम! वह शुभ घड़ी कब आयेगी कि जब नटखट केवटकी नाईं मुझे भी कठौतेमें तुम्हारे कोमल चरणकमलको अपने इन कठोर हाथोंसे खूब मलमलकर धोनेकी अनुमति मिल जायगी?

गोपीकुमार! वह समय कब आयेगा, जब मैं तुम्हें कदम्बपर मन्द-मन्द हास्य करते हुए बाँसुरीके मधुर स्वरोंको गाते सुनूँगा, जिन्हें सुनकर व्रजललनाएँ अपने घर-द्वार, पति-पुत्र, परिवारको परित्यागकर तुम्हारी ओर बलात् खिंच जाती थीं। लीलामय! सुना है, तुम्हारी मुरलीमें विचित्र आकर्षण है! उसके स्वरोंमें अपार अनोखापन है। बाँसुरी तो मैंने बहुत सुनी है, पर तुम्हारी बाँसुरी तो गजब कर देती है। देवता और मनुष्योंकी कौन कहे, पशु-पक्षीतक उस ध्वनिको सुनकर स्तब्ध होकर खाना-पीना भूल जाते हैं।

सुना है, अब भी तुम वृन्दावनकी कुंजोंमें वही राग-तान छेड़ते हो और भाग्यवान् भक्तोंको अब भी तुम्हारी वंशीकी ध्वनि साफ-साफ सुनायी देती है। यदि तुम्हारी कृपादृष्टि हो गयी तो तुम उन्हें अपने मोहन मुखड़ेका दर्शन दे कृतकृत्य कर देते हो। पतितपावन! क्या मुझे प्रेमके प्यालेकी एक बूँद पान करनेका भी अवसर न मिलेगा? क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि तुम्हारा एक प्रेम-पथ-पथिक तुम्हारे प्रेम-पथसे गुमराह हो जाय और कँटीले जंगलोंमें भटकता रहे? यह तो बिलकुल सही है कि मेरे अन्दर व्रजललनाओंका-सा प्रेम नहीं, केवटके-से प्रेम-लपेटे अटपटे बैन नहीं, गजका-सा आर्त्तनाद नहीं, प्रह्लादकी-सी अनन्यता, निष्कामता नहीं, ध्रुवका-सा विश्वास नहीं, द्रौपदीकी-सी पुकार नहीं, सूरदासकी-सी लगन नहीं और गोस्वामी तुलसीदासका-सा भरोसा नहीं, फिर भी तुम ठहरे पतितपावन और मैं ठहरा तुम्हारा एक पतित। यदि तुम्हारा दावा है कि मैं पतित-से-पतितका भी उद्धार करता हूँ तो मैं इसी नाते तुमसे कहता हूँ और करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि वह दिन कब आयेगा जब तुम इस पतितका उद्धारकर अपने पतित-पावन नामको सार्थक करोगे।

मेरे हृदयके राजा! वह दिन कब आयेगा, जब मैं सांसारिक झंझटोंको छोड़, विषयोंसे मुखमोड़, सोनेकी

बेड़ी तोड़ तुम्हारे पादपद्मोंसे सम्बन्ध जोड़ूँगा? कब तुम्हारे चरणोंका स्पर्शकर शान्ति-लाभ करूँगा, तुम्हारे कमल-नयनोंको देखकर तृषित नेत्रोंको शान्त करूँगा, तुम्हारे मुखकंजको निरख-निरख कलेजेकी कसकको मिटाऊँगा और तुम्हारी सुखमयी गोदमें बैठकर तुम्हारे शीतल कर-स्पर्शसे उस आनन्दका अनुभव करूँगा, जिसका करोड़ों जिह्वाएँ भी मिलकर वर्णन नहीं कर सकतीं।

वह दिन कब आयेगा, जब मैं भी सूरदासकी नाईं कहूँगा—

**बाँह छुड़ाये जात हो, निबल जानिकै मोहि।**
**हृदयसे जब जाहुगे, मर्द बदौंगो तोहि॥**

तुम आगे-आगे भागते जाओगे और मैं पीछे-पीछे दौड़ता रहूँगा और तबतक नहीं छोड़ूँगा जबतक तुम पकड़ न जाओगे।

मेरे जीवनाधार! अब न तरसाओ! बस, बहुत हो चुका। सभी बातोंकी एक हद होती है, सभी कामोंका एक अन्त होता है *'का बरषा जब कृषी सुखाने'* अगर मिलना ही है तो अभी मिलो, इसी क्षण मिलो, मैं कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। देखते-देखते आँखें फूट गयीं। रोते-रोते आँसू सूख गये। पुकारते-पुकारते गला बैठ गया, पर तुम न आये। हृदय-कपाट हर समय तुम्हारे लिये खुले पड़े हैं और प्रेम-शय्या भी बिछी है, तुम जब चाहो उसपर शयन कर सकते हो। तुम्हें यह कहनेका भी मौका नहीं मिलेगा कि 'द्वार खटखटाया पर उत्तर न मिला।' द्वार खुला रहनेसे चोर-डाकू बड़ा तंग करते हैं, पर तुम्हारे ही कारण मैंने उन्हें खोल रखा है और तबतक खुला रखूँगा जबतक उनका तनिक भी अस्तित्व रह जायगा। यदि मैं यह समझ लूँ कि तुम नहीं आओगे, तब भी मुझे विश्वास नहीं हो सकता; क्योंकि तुम्हें आना ही पड़ेगा। अवश्य ही अब मैंने समझा, तुम्हारे कर्णरन्ध्रतक मेरी करुण पुकार नहीं पहुँची है, नहीं तो तुम अपना वाहन छोड़ पैदल ही दौड़े चले आते।

याद रखो, यदि देर करके आये तो तुम मुझे नहीं पा सकते।

**प्रान तृषातुरके रहें, थोड़ेहू जलदान।**
**पीछ जल भर सहस घट, डारेहु मिले न प्रान॥**

*बोध-कथा—*

## संस्कारोंकी रक्षा

**'प्रवीणसागर' नामक उत्कृष्ट काव्यग्रन्थके रचयिता ठाकुर महेरामणजीके वंशोत्तराधिकारी राजकोटके ठाकुर लाखाजी राज राजकोट सिविल स्टेशनपर राजकीय अतिथियों तथा रेलवे बोर्डके उच्च अधिकारियोंके बीच एक मजलिसमें बैठे थे।**

**रेशमी सोफासेटपर राजकीय महानुभावोंके अतिरिक्त अँगरेज अधिकारीगण भी अपनी पत्नियोंके साथ बैठे थे।**

**सर लाखाजी राजको आये देखकर सब एकके बाद एक उठकर खड़े हो गये। अँगरेजोंने अपने रिवाजके अनुसार ठाकुर साहेबसे हाथ मिलाये। उनकी मेमोंने भी पाश्चात्य प्रथाके अनुसार सर लाखाजी राजसे हाथ मिलाया।**

**चमकती पोशाक तथा आभूषण-अलंकारोंसे दीप्तिमान् हँसी बिखेरते हुए सभी मेहमानोंसे मिलते हुए लाखाजी राज एक भारतीय अधिकारीसे मिले। फिर तो उन भारतीय अधिकारीकी पत्नीने भी मेमोंकी तरह ठाकुरके साथ हाथ मिलानेको अपना हाथ बढ़ाया, पर तुरंत ही ठाकुरने अपना हाथ बढ़ानेकी जगह उनके सामने दोनों हाथ जोड़ लिये।**

**उन महिलाका लंबा हाथ ऐसे ही रह गया, उसी समय ठाकुर साहेबके मुखसे ये शब्द सुनायी दिये—**

**'बहिन! हमारा धर्म यह नहीं है। हमलोग आर्य हैं। हमारे संस्कार दूसरे प्रकारके हैं। पश्चिमके लोगोंका यह अनुकरण हमारे देशके संस्कारोंको लज्जित करता है। हमारी प्रथा तो परस्पर हाथ जोड़कर नमन करनेकी ही है।'**

# स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके अन्तिम उद्‌गार

१. मैं त्रिकालमें भी शरीर नहीं हूँ।

२. शरीरके नाशसे मुझे दु:ख नहीं होगा। मैं बहुत आनन्दमें रहूँगा।

३. बीचकी यह उपाधि हट जायेगी तो भक्त और भगवान्‌के अनन्त मिलनका अनन्त आनन्द रहेगा। इसलिये इस शरीरके छूटनेपर शोक-सभाएँ नहीं होंगी, सत्संग-समारोह होंगे।

४. शरीरकी वैकुण्ठी नहीं सजेगी, प्रोसेशन नहीं निकलेगा। मैं क्रान्तिकारी संन्यासी हूँ। तुम लोग विधि-विधानमें मत पड़ना। कुटीमेंसे पार्थिव शरीर निकालकर आँगनमें रखकर भस्म कर देना। शरीरकी भस्मी मिट्टीमें मिल जायगी, खाद बन जायगी, घास उगेगी, पशुओंका चारा बनेगा।

५. समाधि-स्थलपर कोई चिह्न नहीं बनेगा, फूल नहीं चढ़ेगा।

६. साधनाका नाश नहीं होता है। अत: सेवा, त्याग, प्रेमका व्रत विभु (व्यापक) होकर जन-समाजमें फैलेगा।

७. इस शरीरकी सेवामें जिसकी रुचि है, वह मानव-सेवा-संघकी सेवा करे। संघ मेरा शरीर है और वह स्थायी रहेगा।

८. जो लोग मुझे प्यार करते हैं, वे भगवान्‌को प्यार करें, क्योंकि भगवत्-प्रेम मेरा जीवन है।

९. जो उपदेष्टा भगवद्-विश्वासकी जगहपर अपने व्यक्तित्वका विश्वास दिलाते हैं और भगवत्-सम्बन्धके बदले अपने व्यक्तित्वसे सम्बन्ध जोड़ने देते हैं, वे घोर अनर्थ करते हैं।

१०. सिवाय परमात्माके और कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, कुछ नहीं है।

११. व्यक्त जगत्‌की विविधताके भीतर अव्यक्त नित्य प्रेमतत्त्वके एकत्वदर्शी सन्तने कहा—

(क) कोई गैर नहीं है—यह धर्मका मन्त्र है।

(ख) कोई और नहीं है—यह प्रेमका मन्त्र है।

प्रिय साधको! इस सत्यको मानो। सर्वसमर्थ प्रभु तुम्हारे अपने हैं, उनके होकर रहो, उन्हींका काम करो और वह सद्‌गुरुका आशीर्वचन है कि उन्हींमें तुम्हारा नित्य वास होगा।

*बोध-कथा—*

# मातृभूमिकी सेवा

**उन दिनों भारत परतन्त्र था। ब्रिटिश शासनमें आईसीएस ऑफिसरोंके ऊपर प्रशासन चलानेकी जवाबदेही होती थी। इन्हें हर तरहकी सरकारी सुविधाएँ और मान-सम्मान मिलता था। अरविन्द घोषके पिताजी चाहते थे कि उनका बेटा भी आईसीएस अधिकारी बने। अरविन्द बहुत ही मेधावी और बहुभाषाविद् थे। वे कैंब्रिज विश्वविद्यालयसे अपनी शिक्षा पूरी करके स्वदेश लौट आये थे। अँगरेजी, जर्मन, स्पेनिश, फ्रेंच, लैटिन आदि दर्जनों भाषाएँ वे फर्राटेसे बोल लेते थे। उनसे आईसीएस बननेकी अपेक्षा करना तो स्वाभाविक ही था, पर उन्होंने अपने लिये कुछ और ही सोच रखा था। पिताके कहनेपर वे परीक्षामें बैठे, सभी विषयोंमें अच्छे-खासे अंक भी लाये, परंतु अन्तिम घुड़सवारी परीक्षामें उन्होंने भाग ही नहीं लिया।**

**उनके शुभचिन्तकोंने सरकारसे अनुरोध किया कि घुड़सवारीकी मामूली-सी परीक्षाके आधारपर अरविन्दको इस सेवाके लिये अयोग्य न माना जाय। सरकारने इसे मान भी लिया था, पर तभी उसे यह गुप्त सूचना मिली कि अरविन्दने भारतको आजाद करानेका संकल्प लिया है तथा इसके लिये उन्होंने एक संस्था भी बनायी है। मित्रोंने उन्हें बहुत समझाया कि अगर वह इस संस्थाको छोड़ दें तो आईसीएस अधिकारी बन सकते हैं। अरविन्दने जवाब दिया—'यदि अँगरेज भारत छोड़ दें तो हम भी संस्था छोड़ देंगे, परंतु भारतमाताकी सेवाके आगे अँगरेजोंकी सेवा हमें मंजूर नहीं।'** [श्रीनागानन्दजी]

साधकोंके प्रति—

# अमृत-बिन्दु

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

❀ साधकके भीतर हर समय यह भाव रहना चाहिये कि मैं यहाँका निवासी नहीं हूँ, प्रत्युत (भगवान्‌का ही अंश होनेसे) भगवद्धामका निवासी हूँ।

❀ अपनी कमाईमें किसीके हकका एक कण भी न आ जाय—इस बातकी पूरी सावधानी रखनी चाहिये।

❀ जब चेतन जड़से 'तादात्म्य' कर लेता है, तब परिच्छिन्नता अर्थात् अहंता उत्पन्न होती है। अहंतासे 'ममता' उत्पन्न होती है, जिससे विकार पैदा होते हैं। ममतासे 'कामना' उत्पन्न होती है, जिससे अशान्ति पैदा होती है।

❀ साधक ऐसा माने कि मैं जो कुछ करता हूँ, वह भगवान्‌की पूजा है और जो कुछ हो रहा है, वह भगवान्‌की लीला है।

❀ वर्तमानमें मनुष्य पशुसे भी नीचे गिरता चला जा रहा है; क्योंकि पशु तो अपने निर्वाहकी वस्तु ही लेता है, दूसरोंका हक नहीं मारता, पर मनुष्य दूसरोंका भी हक मारकर संग्रह करता है।

❀ शरीरकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका प्रबन्ध तो परमात्माकी तरफसे है, पर तृष्णाकी पूर्तिके लिये कोई प्रबन्ध नहीं।

❀ साधक जब अपने दोषोंको दोषरूपसे देखकर उनके दुःखसे दुखी हो जाता है, उनका रहना उसे असह्य हो जाता है, तो फिर उसके दोष ठहर नहीं सकते। भगवान्‌की कृपा उन दोषोंका शीघ्र ही नाश कर देती है।

❀ नेत्रोंसे ज्यादा याद मनको रहती है, मनसे ज्यादा याद बुद्धिको रहती है और बुद्धिसे ज्यादा याद स्वयंको रहती है। स्वयं जिस बातको पकड़ लेता है, वह बात हरदम याद रहती है।

❀ अपने-अपने स्थान या क्षेत्रमें जो पुरुष मुख्य कहलाते हैं, उन अध्यापक, व्याख्यानदाता, आचार्य, गुरु, नेता, शासक, महन्त, कथावाचक, पुजारी आदि सभीको अपने आचरणोंमें विशेष सावधानी रखनेकी अत्यधिक आवश्यकता है, जिससे दूसरे लोगोंपर उनका अच्छा प्रभाव पड़े।

❀ करना चाहते हो तो सेवा करो, जानना चाहते हो तो अपने-आपको जानो और मानना चाहते हो तो प्रभुको मानो। तीनोंका परिणाम एक ही होगा।

❀ जैसे कलम बढ़िया होनेसे लिखाई तो बढ़िया हो सकती है, पर उससे लेखक बढ़िया नहीं हो जाता, ऐसे ही करण (अन्तःकरण) शुद्ध होनेसे क्रिया तो शुद्ध हो सकती है, पर उससे कर्ता शुद्ध नहीं हो जाता।

❀ लोग हमें जितना अच्छा समझते हैं, उतने अच्छे हम नहीं होते और लोग हमें जितना बुरा समझते हैं, उससे हम अधिक बुरे होते हैं—इस वास्तविकताको समझकर 'लोग हमें अच्छा समझें'—इस इच्छाका त्याग कर देना चाहिये और अपनी दृष्टिसे अच्छे-से-अच्छा बननेकी चेष्टा करनी चाहिये।

❀ संयोगजन्य सुखकी लालसा जितनी घातक है, उतना सुख घातक नहीं है। शरीर बना रहे—यह भाव जितना घातक है, उतना शरीर घातक नहीं है। कुटुम्बका मोह जितना घातक है, उतना कुटुम्ब घातक नहीं है। रुपयोंका लोभ जितना घातक है, उतने रुपये घातक नहीं हैं।

❀ जो दीखता है, उस संसारको अपना नहीं मानना है, प्रत्युत उसकी सेवा करनी है और जो नहीं दीखता, उस भगवान्‌को अपना मानना है तथा उसको याद करना है।

❀ मिले हुए संसारका दुरुपयोग मत करो, जाने हुए तत्त्वका अनादर मत करो और माने हुए परमात्मामें सन्देह मत करो।

❀ हमारे हृदयमें जड़ता (शरीर-संसार)-का जितना आदर हुआ है, उतना ही परमात्माका अनादर हुआ है और वह अनादर ही हमारा पतन करेगा, हमारी अधोगति करेगा।

# श्रीरामके चरित्रकी प्रासंगिकता

( डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त )

मानव-जीवनका उद्देश्य उसके लिये सुमंगलका योग और क्षेम है। श्रीरामके चरित्रका श्रवण एवं अनुसरण मनुष्यमात्रके लिये सकल सुमंगलदायक है। यथोल्लेख है—

**सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।**
**सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥**

(रा०च०मा० ५।६०)

मनुष्यको सही मनुष्य बननेके लिये कतिपय मानवीय गुणोंको आत्मसात् करना अनिवार्य है। यथा—विद्या, विनय, संयम, शील, शालीनता, सत्कर्म-प्रवृत्ति एवं सदाचरण। हमारे आदर्श श्रीरामके चरित्रमें उक्त सभी गुण विद्यमान हैं। एक सही समाजके स्थापन एवं स्थायित्वमें उक्त मानवीय गुणोंसे अन्वित मानव-समुदायका होना अपरिहार्य है। आजके भारतीय समाजमें मानव-संवर्गमें उक्त मानवीय गुणोंका ह्रास दृष्टिगोचर होता है। हमें श्रीरामके बचपनके सुसंस्कारोंसे लेकर राजा बननेतकके त्यागपूर्ण जीवन-चरितको प्रत्यक्षकर उसे जीवनमें उतारना होगा, तभी हम रामराज्यकी स्थापनाके सच्चे भागीदार बनेंगे। आइये, यहाँ श्रीरामके निर्मल चरित्रके कतिपय गुणोंपर दृष्टिपात करें।

**संस्कारित बचपन**—बिना संयम, शील और तपश्चर्याके तो गर्भाधान-संस्कार करना ही बहुत बड़ी मूर्खताका परिचायक है। बुद्ध, शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, भर्तृहरि आदि अनेक नाम ऐसे हैं, जिनके माता-पिताकी तपश्चर्या इनकी उत्पत्तिमें सम्मिलित रही है। स्वयं श्रीराम और उनके सभी भाइयोंकी उत्पत्ति या जन्मके लिये राजा दशरथने एक सात्त्विक अनुष्ठानका आयोजन किया था, जिससे समस्त वातावरण सादगीपूर्ण एवं प्रभामय बना था। यथोल्लेख है—

**सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥**
**भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥**
**जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥**

(रा०च०मा० १।१८९।५—७)

यज्ञानुष्ठानसे सम्पूर्ण वातावरण हर्षोल्लाससे परिपूर्ण हो गया। हर्षित मनसे राजा दशरथकी रानियाँ गर्भवती हुईं। यथा—

**एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥**
**जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥**
**मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेज की खानी॥**
**जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।**
**चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥**

(रा०च०मा० १।१९०।५—७, दोहा १९०)

प्रसन्नताके वातावरणमें गर्भाधान-संस्कारका सुफल श्रीराम-जैसी सत्य, शील, शालीन, सच्चरित्र सन्ततिकी प्राप्तिका होना है। श्रीरामका जन्म हुआ, ब्रह्मानन्द-जैसा महोत्सव अनुभव हुआ। इसी आनन्दविभोर स्थितिमें जातकर्म-संस्कारकी सुखद आयोजना हुई, पुनश्च नामकरण-संस्कारसे सीधा, सरल, आत्मीय नाम श्रीराम रखा गया, जो प्रभावपूर्ण एवं सुखका धाम बना। गर्भाधानकी सुचारुतासे लेकर नामकरणकी मनोहरताने रामसहित चारों भाइयोंके अन्तःमें शीलकी संयोजना की। यथोल्लेख है—

**चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥**

(रा०च०मा० १।१९८।६)

चूडाकरण-संस्कार, पुनश्च उपनयन (जनेऊ)-संस्कारके पश्चात् विद्याग्रहण-संस्कारसे श्रीरामकी गुरुदीक्षा सम्पन्न करायी गयी। समस्त उत्कृष्ट संस्कारोंसे सुपुनीत हुए श्रीराम संस्कारोंसे सुबुद्ध हुए। अल्पकालमें ही सर्वज्ञ हो गये तथा विनय और शीलके धाम भी बन गये। यथोल्लेख है—

**गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥**
**बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥**

(रा०च०मा० १।२०४।४, ६)

**मानवताका आधान**—मानव बननेके लिये मनुष्यमें मानवताका आधान अनिवार्य है। श्रीराममें विद्यासे विनयका आधान हुआ। उनमें शील आया, सत्कर्म

करनेकी सुवृत्ति आयी, माता-पिताकी आज्ञाका अनुपालन करना आया एवं सभी प्राणियोंको सुख देनेका भाव जाग्रत् हुआ। यथा—

**अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥**
**जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥**

(रा०च०मा० १। २०५। ४-५)

माता-पिताकी सही आज्ञाका सतत अनुपालन करनेपर ही पुत्र श्रेष्ठ चरित्रवान् मान्य होता है। श्रीराममें यह द्रष्टव्य है—

**आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥**

(रा०च०मा० १। २०५। ८)

ज्ञानकी गरिमा विनम्रतासे है। प्रात:काल उठकर श्रीराम सर्वप्रथम माता-पिता और गुरुको प्रणाम करते थे। गुरुजनोंके चरणोंमें नत होना उन्होंने अपना सहज स्वभाव बनाया था, जिससे उन्हें अतुल आशीष प्राप्त हो सके। यथा—

**प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥**

(रा०च०मा० १। २०५। ७)

सुयोग्य पुत्र वही है, जो बड़ोंके शुभाशीष-ग्रहणकी क्षमता रखता हो। आजके सन्दर्भमें यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आराधन है, जो सन्ततिको उसके शीलकी रक्षाके साथ ही अलौकिक अतुल शक्ति प्रदान करता है। शुभाशीष-ग्रहणसे व्यक्तिमें मानवताके सभी गुण आत्मसात् होते हैं, जिससे मानव-जीवन धन्य बनता है।

**श्रीरामका त्याग और वीरता**—व्यक्तिका सौन्दर्य उसके सदाचार और त्यागमें निहित है। श्रीरामने अपनी किशोरावस्थामें ही अपने उत्कृष्ट चरित्र और अतुल त्यागका परिचय दिया। महर्षि विश्वामित्रके यज्ञका रक्षण तो एक बहानामात्र था, इसमें जो लोकहित निहित था, वह अपूर्व था। राजभोगोंसे दूर जन-जनकी सेवामें संलग्नता और लोकाराधन श्रीरामके आदर्श एवं अनुकरणीय चरित्रकी मनोरमता बन गयी थी। मानव-जीवनमें त्यागकी बड़ी महत्ता है। संग्रह विनाशको आमन्त्रण देता है और त्याग शान्ति, प्रसन्नता, आनन्द और मुक्तिका पर्याय है। अधिकारी होते हुए भी बड़े ही नि:स्पृह भावसे राज्यका परित्याग श्रीरामका एक ऐसा उदाहरण है, जो सृष्टिसे आजतकके इतिहासमें अद्वितीय है। रामकी यह वृत्ति अपनानेपर किसी भी गृहस्थके अन्त:में द्वन्द्वोंकी विभीषिका पनप ही नहीं सकती। त्याग-वृत्तिसे मानव-समाज सौहार्द-समन्वित होकर सुख, शान्ति और अभ्युदयको सहज प्राप्त कर सकता है। रामका त्यागभाव आज पूर्णतया प्रासंगिक एवं अनुकरणीय है।

**नायकके रूपमें जनसेवक**—रामराज्यको सभी चाहते हैं। राम एक राजाके रूपमें प्रतिष्ठित थे, लेकिन उससे कहीं अधिक वे जनसेवक थे। उनके जनसेवाभाव और त्यागभावसे सम्पूर्ण जनमानस पूर्ण सुखी था। यथोल्लेख है—

**राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥**
**बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥**
**बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।**
**चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥**

(रा०च०मा० ७। २०। ७-८, ७। २०)

राजाका चरित्र प्रजा अविलम्ब अनुकरण करती है। रामका चरित्र इतना उदार और श्रेष्ठ था कि उसे देखकर सम्पूर्ण प्रजा हर्षित थी तथा उनके अनुसार ही स्वयंको चलानेमें तत्पर भी थी। यथा—

**रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥**

(रा०च०मा० ७। २०। ६)

निष्कर्षत: अपने श्रेष्ठ चरित्रसे ***'अब भी घर घर रम रहा दो अक्षर का नाम'*** ऐसा है यह 'राम' का उदार चरित्र, जो सहस्रों वर्षोंसे जन-जनमें रमा है। हम सभी चाहते हैं कि धरतीपर 'रामराज्य' आये, तो इसके लिये हमें रामके चरित्रका अनुकरण करना होगा, जो आजके सन्दर्भमें अत्यन्त प्रासंगिक एवं लोक-हितकारी है। आओ, हम अपने अन्त:में रामके चरित्रको बैठा लें।

# त्रिपुरवधका आध्यात्मिक रहस्य

( पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विद्यानिधि )

इतिहास-पुराणोंमें त्रिपुरवधकी कथा प्रसिद्ध है। जैसे वेदोंके तात्पर्य आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीन पक्षोंमें लग जाते हैं, उसी प्रकार पुराणकी कथाएँ भी उपर्युक्त तीनों पक्षोंमें लग जाती हैं। इन कथाओंमें केवल आधिभौतिक पक्ष ही नहीं है, प्रत्युत कामधेनुवत् अन्य आध्यात्मिकादि पक्ष भी अनुसंधेय हैं। यहाँ त्रिपुरासुरकी कथामें आधिभौतिक पक्षके साथ ही उसके आध्यात्मिक पक्षपर भी विचार किया जायगा।

## आधिभौतिक पक्ष

तैत्तिरीयसंहिता (३। २। ६। १), ऐतरेयब्रा० (२। ११), लिंगपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण (४। ५) तथा शिवपुराण आदिमें त्रिपुर-वधकी कथा आती है। संक्षेपमें वह इस प्रकार है—

प्राचीनकालमें असुरोंकी एक शाखा दानव जातिमें त्रिपुर नामका एक असुर उत्पन्न हुआ। उस असुरने तीनों लोकोंमें तीन पुर बनाकर स्थापित किये। उन तीन पुरों (नगरों)-का आश्रय लेकर वह असुर देवताओंको कष्ट दिया करता था। इन तीन पुरोंमें आकाशस्थ नगर सुवर्णका, अन्तरिक्षस्थ चाँदीका और पृथ्वीस्थ नगर लोहेका था। ये तीनों नगर संचरणशील थे। त्रिपुर अपनी इच्छाके अनुसार इन नगरोंको कहीं भी ले जाया करता था। मायानिर्मित होनेके कारण इन नगरोंको पृथ्वीमें ही नहीं, आकाश या पातालमें भी ले जाया जा सकता था। ये तीनों नगर अभेद्य एवं अजेय थे। इन तीनों नगरोंको तोड़नेके लिये एक ही उपाय था; वह यह कि जिस दिन पुष्य नक्षत्र होता था, उस दिन ये तीनों नगर भिन्न-भिन्न दूरी और स्थानोंमें होते हुए भी जब एक लक्ष्यमें आ जाते तब किसी परम समर्थद्वारा भेद्य बन जाते थे। परंतु इस रहस्यको कोई नहीं जानता था।

त्रिपुरासुरके डरसे देवता इधर-उधर भाग गये थे। देवताओंने भगवान् शंकरसे अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना की। भगवान् शंकरने एक रथमें चढ़कर त्रिपुरासुरके साथ युद्ध किया। त्रिपुरासुरके साथ भगवान् शंकरके युद्धका वर्णन 'शिवमहिम्नः स्तोत्र'के निम्नलिखित पद्यमें है—

**रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो**
**रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।**
**दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-**
**र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥**

(शिवमहिम्नस्तोत्र १८)

शिवमहिम्नः स्तोत्रके इस श्लोकमें कहा गया है कि त्रिपुरासुरके साथ युद्ध करते समय पृथ्वी ही भगवान् शिवका रथ बनी, ब्रह्माजी रथ-चालक सारथी बने, हिमालयपर्वत उनका धनुष बना तथा सूर्य और चन्द्रमा उनके रथके पहिये बने। भगवान् विष्णु बाण थे। प्रत्यंचा 'डोरी'के बिना धनुषसे बाण नहीं चलाया जा सकता, इसलिये शिवपुराणमें नागराजको उस तत्कालीन धनुषकी डोरी कहा गया है। इन सब साधनोंके होनेपर पुष्य नक्षत्रमें भगवान् शंकरने त्रिपुररूपी तृणको भस्म कर डाला, त्रिपुरासुरका वध किया। इसीलिये भगवान् शंकरको 'त्रिपुरारि' या 'पुरारि'* भी कहते हैं।

## आध्यात्मिक पक्ष

यहाँ जिज्ञासा होती है कि अध्यात्मदृष्ट्या ये तीन पुर कौन और क्या हैं तथा तीनों पुरोंमें रहनेवाला असुर कौन है? पृथ्वी रथ कैसे है? ब्रह्मा कौन हैं, जो रथको चलाते हैं? हिमालयपर्वत धनुष कैसे हुआ? नागराज धनुषकी डोरी कैसे हैं? सूर्य और चन्द्रमा रथके पहिये किस प्रकार हैं? विष्णुभगवान् बाण कैसे हैं? जिन्होंने त्रिपुरासुरका नाश किया, वे शिव कौन हैं? इत्यादि।

उत्तर है कि स्थूल, सूक्ष्म, कारण-भेदसे तीनों प्रकारके शरीर ही तीन पुर हैं। जो सप्त धातुवाला हमारा शरीर है—वह स्थूल शरीर है। सूक्ष्म शरीरमें सत्रह वस्तुएँ—पाँच वायु, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि और मन; इस प्रकार इन सत्रह सूक्ष्म पदार्थोंसे युक्त शरीरको सूक्ष्म अथवा लिंगशरीर कहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर ही नटकी तरह कर्मोंके वशीभूत होकर भिन्न-भिन्न शरीरोंको धारण करता है। कारण शरीर मायाको कहते हैं। इस प्रकार ये तीनों शरीर तीन पुर हैं। कठोपनिषद्की पाँचवी वल्लीके पहले मन्त्र—

* शास्त्रोंमें त्रिपुरवधसे सम्बद्ध शिवके निम्नलिखित अन्य नाम भी मिलते हैं—त्रिपुरघ्न, त्रिपुरघातिन्, त्रिपुरजित्, त्रिपुरदहन, त्रिपुर-द्विष्, (रघुवंश १७। १४ इत्यादि), त्रिपुरद्रुह (बालरामायण-मंगलाचरण), त्रिपुरमथन, त्रिपुरप्रमाथिन्, त्रिपुरहर, त्रिपुरहा एवं त्रिपुराराति इत्यादि।

'**पुरमेकादशद्वारम्**'में शरीरको पुर शब्दसे कहा है। इस प्रकार वेदान्तमें प्रसिद्ध स्थूल शरीर एक पुर है, सूक्ष्म शरीर दूसरा पुर है और कारण शरीर तीसरा पुर है। तीनों शरीरोंमें रहनेवाला अहंकार त्रिपुरासुर है। बुरी वृत्तियोंको असुर कहते हैं। अहंकारके होनेपर वृत्तियाँ कुत्सित और मलिन हो जाती हैं। इसलिये श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १६ श्लोक १४)-में कहा गया है—

**असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।**

'मैंने अमुक शत्रुको तो मार दिया, दूसरोंको भी मार दूँगा।' आसुरी वृत्तिवाला पुरुष हिंसा करनेमें संकोच नहीं करता। शत्रुमारण आदि कर्मोंमें वह सर्वत्र प्रवृत्त हो जाता है। अतः यह अहंकार ही त्रिपुरासुर है। पृथ्वीको रथ कहनेका अभिप्राय यह है कि पृथ्वी आश्रय है। ब्रह्मा रथके चलानेवाले थे—इस कथनका अभिप्राय यह है कि बुद्धिका अधिष्ठाता ब्रह्मा होता है। 'वेदान्तसार'में सदानन्दकी स्पष्टोक्ति है—

**'चन्द्रचतुर्मुखशंकराच्युतैः क्रमात् नियन्त्रितेन मनोबुद्ध्यहंकारचित्ताख्येन अन्तरिन्द्रियचतुष्केण।'**

अर्थात्—मनका अधिष्ठाता चन्द्रमा है। बुद्धिके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं। अहंकारके अधिष्ठाता शंकर हैं और चित्तके अधिष्ठाता भगवान् अच्युत हैं। इस सद्बुद्धिके बिना वेदार्थका निर्णय नहीं हो सकता।

नागराजको धनुषकी डोरी कहनेका भाव यह है कि सर्पोंमें सबसे अधिक तमोगुण होता है। इस जातिमें अत्याधिक तमोगुण होनेका एक उदाहरण पर्याप्त है कि सर्पिणी अपने अण्डोंतकको भी खानेमें प्रवृत्त हो जाती है। प्रत्यंचा या डोरी कहनेका अभिप्राय है कि जैसे डोरी खींची जाती है, उसी प्रकार तमोगुणका भी आकर्षण करना चाहिये।

सूर्य और चन्द्रमाको रथके पहिये कहनेका अभिप्राय—सूर्य और चन्द्रमा कालके प्रतिनिधि हैं। अर्थात् सूर्य और चन्द्रमाके बिना मास, पक्ष, योग इत्यादि कालका ज्ञान नहीं हो सकता। वर्तमान योगके ज्ञानके लिये सूर्य स्पष्टमें चन्द्र स्पष्टकी कलाओंको जोड़ना पड़ता है। 'सूर्यसिद्धान्त' स्पष्टाधिकारमें कहा गया है—

**रवीन्दुयोगलिप्ताश्च योगा भभोगभाजिताः।**

(स्प० ९५)

तिथिज्ञानके लिये सूर्य स्पष्टमेंसे चन्द्र स्पष्टको घटाया जाता है। मासके ज्ञानके लिये भी चन्द्रमाकी अपेक्षा है। चित्रा नक्षत्रमें जब चन्द्रमा हो तो ऐसी पौर्णमासी तिथि चैत्री कहलाती है। चैत्री पौर्णमासी जिस मासमें हो उसे चैत्रमास कहते हैं। इसी प्रकार वैशाख आदि महीनोंके विषयमें जानना होता है। नव्यन्यायकी रीतिसे भी 'अब घड़ा है' का यह ज्ञान भी सूर्यकी क्रियाद्वारा होता है। इस प्रकार कालमात्रके ज्ञानके लिये सूर्य और चन्द्रमाकी अपेक्षा है। अतः सूर्य और चन्द्रमाको रथका पहिया कहा गया है। विष्णुको बाण कहनेका अभिप्राय क्या है? सत्त्वगुणके अधिष्ठाता चेतनको विष्णु कहते हैं। जब पुरुषमें सत्त्वगुणकी अधिकता होती है तो तमोगुण दब जाता है। सत्त्वगुणकी अधिकतासे ब्रह्मात्मैक्य और प्रकृति-पुरुषके भेदका ज्ञान हो जाता है। प्रकृति और पुरुषके भेदज्ञानसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरोंका तथा इन तीनों शरीरोंमें होनेवाले अहंकाररूप असुरका सर्वथा नाश हो जाता है।

त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले शिव कौन हैं? समाधिस्थ जीवको शिव कहते हैं। '**तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम्**'-इस योगसूत्रके अनुसार समाधिकालमें जीव अपने स्वरूपमें स्थित होता है। '**शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते**'—इस श्रुति-वचनके अनुसार जीव ही शिव है अथवा वेदान्तमें अहंकारके अधिष्ठाता शंकर हैं। जो जिसका अधिष्ठाता होता है, वह उस वस्तुको जैसा चाहे, वैसा कर सकता है। उस वस्तुको रख सकता है, नष्ट भी कर सकता है।

पुष्यनक्षत्रमें पुरभेदनका अभिप्राय है कि पुष्यनक्षत्रमें आरम्भ किया हुआ कार्य सिद्ध हो जाता है। इसीलिये व्याकरणमें '**पुष्यन्त्यस्मिन्नर्था इति पुष्यः**' इस व्युत्पत्तिमें पुष् धातुसे क्यप् प्रत्यय करके '**पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे**' (३। १। ११६) इस सूत्रसे 'पुष्य' एवं 'सिध्य' शब्दोंकी सिद्धि की गयी है। '**सर्वसिद्धिकरः पुष्यः विद्यायां च गुरुर्यथा**' इस 'नाह्निकदत्त पंचविंशतिका'के पद्यमें 'पुष्यनक्षत्र सिद्धि देनेवाला है' यह स्पष्ट कहा गया है। आध्यात्मरूप अच्छी वृत्तियोंको देवता कहते हैं और बुरी वृत्तियोंको असुर कहते हैं। इन वृत्तियोंमें परस्पर युद्ध होता रहता है। कभी अच्छी वृत्तियाँ प्रबल होती हैं, तो कभी बुरी। यही देवताओंका असुरोंके साथ संग्राम है। त्रिपुरासुर-वधके कथानकका यह आध्यात्मिक पक्ष आध्यात्मिक चेतनाके लिये मननीय और उपयोगी है।

# वृन्दावनसेवी साधकोंकी दृष्टिमें श्रीवृन्दा

( डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा )

भगवद्धाम वृन्दावन असाधारण आकर्षणकी भूमि है, जिसके चुम्बकीय प्रभावका अनुभव जड़-चेतन, सभीको है, परंतु भगवती वृन्दाके अनुग्रहके बिना वृन्दावनवास अत्यन्त दुर्लभ ही रहता है। पौराणिक सन्दर्भोंके परिप्रेक्ष्यमें देखें तो ब्रह्मवैवर्त, वराह, पद्म, बृहद्धर्म एवं बृहन्नारदीय आदि पुराणोंमें वृन्दादेवीसे सम्बन्धित विवरण विविधताओंके साथ दृष्टिगत होते हैं। विक्रमकी सोलहवीं सदीके आते-आते यह वृन्दा-विपिन और यहाँकी वनदेवी वृन्दाका स्वरूप अधिकाधिक विविधताओंसे समन्वित हो उठा था। व्रजक्षेत्रस्थ विभिन्न वैष्णव-परम्पराओंमें वृन्दाका जो स्वरूप दर्शित है, वह वनदेवी वृन्दाको समझनेकी सहज एवं अभिनव दृष्टि प्रदान करता है। वृन्दादेवीसे जुड़े पुराण-आधारित सन्दर्भ या तुलसीका वन ही वृन्दाके इस विपिनकी पूर्ण परिभाषा नहीं है, अपितु इस पवित्र वनमें साधनारत साधकोंने वनदेवी वृन्दाको जिस भावसे जिया, वह अद्भुत है। यह उन महासाधकोंकी अनुभूतिका धरातल है, जिनके लिये श्रीकृष्णकथा अपरकालीन नहीं, वर्तमान है। साधकोंके इष्ट युगल-स्वरूप श्रीराधाकृष्ण और उनके सखी-परिकरकी नित्य विहारस्थली है यह दिव्य वृन्दावन। वनदेवी वृन्दाकी कृपा प्राप्तकर साधकजन प्रभुकी सुखद लीलाओंमें सहभागिताकी कामना करते हुए इस पवित्र स्थलीमें मृत्युपर्यन्त बने रहनेकी अभिलाषा रखते हैं। वृन्दाविपिनके साधक जानते हैं कि ये वह दिव्य स्थली है, जहाँ भक्तिका भी उद्धार हुआ है—**धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च।** वृन्दावनमें भजन करते साधकको धामप्राप्ति होनेपर उसके भाग्यकी सराहना करते हुए भगवतरसिकजीकी इस वाणीका गायन होता है—

**भाग बड़े विंदावन पायौ।**
**जा रज कौ सुर नर मुनि वांछित, विधि संकर सिर नायौ॥**
**बहुत जुग या रज बिनु बीते, जन्म-जन्म डहकायौ।**
**सो रज आजु कृपा करि दीनी, अभै निसान बजायौ॥**
**आइ मिल्यौ परिवार आपने, हरि हँसि कंठ लगायौ।**
**स्यामा-स्याम जू बिहरत दोऊ, सखी समाज मिलायौ॥**
**सोक संताप करौ मति कोई, दाव भलौ बनि आयौ।**
**रसिक बिहारीकी गति पाई धनि-धनि लोक कहायौ॥**

ध्रुवदासजीके शब्दोंमें साधक कहते हैं—

**खण्ड-खण्ड ह्वै जाय तन, अंग-अंग सत टूक।**
**वृन्दावन नहीं छाड़िबौ, छाड़िबौ है बड़ी चूक॥**

इसपर भी दु:खद बात यह है कि मन्दिरोंका नगर कहे जानेवाले इस वृन्दावनमें आज, उन वनदेवी वृन्दाका एक भी स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है, जो कि वन-उपासक सन्तोंकी जीवनपद्धतिका मुख्य आधार रही हैं। वृन्दावनमें निवासकी चाह रखनेवाले साधक युगल-स्वरूपकी भक्तिमें रत होनेसे पूर्व वनदेवी वृन्दाको प्रसन्न करते तथा यहाँ स्थायी निवासहेतु निवेदन करते थे। विपत्तिके समय उनको वनरक्षिका वृन्दादेवी ही प्रथमदृष्ट्या स्मरण होती थीं। वृन्दावनविषयक प्राचीन सन्दर्भ बताते हैं कि १६वींसे १८वीं सदीके बादतक यहाँ विभिन्न स्थलोंपर वृन्दादेवीके मन्दिर विद्यमान थे। प्राचीन सन्दर्भोंके अनुसार वृन्दावनका भौगोलिक विस्तार अतिव्यापक था। 'व्रजका सांस्कृतिक इतिहास' नामक ग्रन्थमें श्रीप्रभुदयालजी मीतल कहते हैं कि वृन्दावनको व्रजके द्वादश वनोंमें सातवाँ वन माना जाता है। तुलसी, राजा केदारकी कन्या, श्रीराधा, श्रीराधाकी एक सखी और वेंदा नामकी यक्षिणी—इन सभीको यथाप्रसंग 'वृन्दावन' इस नामकरणमें निमित्त माना जाता है। वेंदा यक्षीका उल्लेख बौद्ध साहित्य (गिलगिट मैन्युस्क्रिप्ट)-में मिलता है। यहाँ मथुरामण्डलमें स्थित जिन यक्षी-यक्षोंके नाम बताये गये हैं, उनमें वेंदा या वृंदा भी है। यह संकेत श्रीकृष्णदत्त वाजपेयीने वृन्दाविषयक अपने लेखमें भी दिया है, किंतु व्रजकी विभिन्न वैष्णव-परम्पराओंमें सुलभ शृंखलाबद्ध सन्दर्भोंकी तुलनामें इस सम्भावनाकी पुष्टिहेतु अन्य विवरण सुलभ नहीं होते। वृन्दावनमें गोविन्ददेव मन्दिरमें वृन्दादेवी (वर्तमानमें कामवन)-के साथ ही नन्दगाँवके समीप वृन्दाकुण्ड, वृन्दावनस्थ छीपीगलीमें गूदर-भूधरदास बाबाकी आराध्या वृन्दादेवीकी तथा सेवाकुंज एवं व्रजयात्राकी विभिन्न पोथियोंमें वंशीवट-परिक्षेत्रान्तर्गत

गोपेश्वर महादेवके समीपवर्ती वृन्दादेवीके मन्दिरकी जानकारी मिलती है। एक यह भी मान्यता है कि श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभद्वारा भी वृन्दादेवीके श्रीविग्रहको वृन्दावनमें स्थापित किया गया था।

१६वीं सदीके दौरान वृन्दावनके ब्रह्मकुण्डसे श्रीरूप गोस्वामीजीने वृन्दादेवीके विग्रहका प्राकट्य किया। उल्लेखनीय है कि पूर्वमें वृन्दावनका गोपेश्वर मन्दिर परिक्षेत्र सम्भवत: लोक-सम्बोधनमें वृन्दावनस्थ ब्रह्मकुण्ड तथा गोविन्ददेवतकके क्षेत्रका प्रतिनिधित्व करता हो, जिस कारण व्रजयात्राके लिखित विवरणोंमें गोपेश्वर महादेवके साथ ही पुन:-पुन: वृन्दादेवीका उल्लेख आया है। पुराने समयमें ब्रह्मकुण्ड, गोविन्ददेव मन्दिरके ही अहातेमें रहा हो तथा प्राकट्योपरान्त वृन्दादेवीजीकी सेवा-पूजा इस स्थल (योगपीठ)-पर की जाती रही हो—इसी कारण इसे व्रजयात्राकी पोथियोंमें गोपेश्वर महादेवके समीप इंगित किया गया हो। जो भी हो, यह शोधका विषय है कि गोपेश्वर महादेवके समीप पृथक्से वृन्दादेवीका मन्दिर था, या ये वही वृन्दादेवी हैं, जो रूप गोस्वामीजीके द्वारा प्रकटित और गोविन्ददेव मन्दिरके प्रांगणमें सेवित रहीं। वृन्दावनके गोविन्ददेव मन्दिरमें स्थित वृन्दादेवीकी ख्याति विभिन्न सन्दर्भोंसे उद्घाटित है। यहाँ वृन्दादेवीका भव्य मन्दिर हुआ करता था।

ध्रुवदासजीने वृन्दावन शब्दके अंशभूत 'वृन्दा' इतने अंशको भी पापराशिविनाशक बतलाते हुए कहा है—

**वृन्दावन वृन्दा कहत दुरित वृन्द दुरि जाहिं।**
**नेह बेलि रस भजन की तब उपजें मन माहि॥**[१]

वनदेवी वृन्दा यहाँ साधकोंका प्राणाधार हैं। उन्हींकी कृपासे राधा-कृष्णकी अन्तरंग लीलाओंमें वनसेवी साधकोंका प्रवेश हो पाता है। सन् १७५७ ई०के जनवरी-फरवरी मासमें अहमद शाह अब्दालीने मथुरापर हमला करनेके लिये सैनिकोंकी एक टुकड़ीको भेजा था, जिसने वृन्दावनको भी अपनी क्रूरतासे कुचला और निर्मम हत्याएँ कीं। हित वृन्दावनदासकी कृति 'हरिकलाबेली' में इस घटनाका वर्णन प्राप्त होता है, जहाँ अपने साथी साधकोंके दारुण नरसंहारसे व्यथित चाचा वृन्दावनदासने निम्नोक्त रूपमें वृन्दादेवीसे करुण प्रार्थना की—

**एहो वृन्दा मनसा संकेत की निवासी देवि,**
**मथुरा की पालक ब्रज पर सदृष्टि जोवनी।**
**वृन्दावन हित रूप मंगल विस्तारी,**
**सुविधि भाँति भाँति संतन के द्रोही असुर सोवनी॥**[२]

श्रीरूपगोस्वामीने राधाकृष्णगणोद्देशदीपिकामें वृन्दाके सम्बन्धमें कहा है कि यह राधाकृष्णकी विलास कुंज-निकुंज आदिको व्यवस्थित करनेकी सेवामें निपुण हैं। लताओंके सन्दर्भमें इन्हें विशेष बोध है। ये आयुर्वेदकी ज्ञाता हैं। इनका वर्ण तप्त कंचनके समान गौर है। यह नीले वस्त्र धारण करती हैं। इनके पिता चन्द्रभान और माता फुल्लरा हैं। ये सदैव वृन्दावनमें विराजित रहती हैं।

श्रीरूपगोस्वामीजीने युगलस्वरूपकी सेवामें रत दूतियोंका उल्लेख करते हुए कहा है, वृन्दा, वृन्दारिका, मेला तथा मुरली आदि गोपिकाएँ जो दूती कहलाती हैं, वे राधाकृष्णका मिलन करानेहेतु सुन्दर लता-कुंज निर्मित करनेमें दक्ष हैं। ये लीलाके सभी श्रेष्ठ स्थानोंको अपने अधिकारमें रखती हैं। इन सबमें वृन्दा सबसे वरिष्ठ हैं—

**तप्तकाञ्चनवर्णाभा वृन्दा कान्तिर्मनोहरा।**
**नीलवस्त्रपरीधाना मुक्तापुष्पविराजिता॥**
**वृन्दा वृन्दारिका मेला मुरल्याद्यास्तु दूतिकाः।**
**कुञ्जादिसंस्कृताभिज्ञा वृक्षायुर्वेदकोविदाः॥**

वनदेवी वृन्दा सखी स्वरूपमें विद्यमान रहकर युगल (राधाकृष्ण)-की सेवामें उपस्थित रहते हुए, उनकी अभिलाषाके अनुरूप कुंजोंकी रचना करती हैं। युगल सरकारको प्रसन्न करनेके निमित्त वह अपने वनका नव-नव प्रकारसे शृंगार करती हैं। वह राधाकृष्णकी हृदयकी बात जानकर उन्हें सुख प्रदान करती हैं—

**देवी वृन्दाविपिन की वृन्दा सखी सरूप।**
**जिहिं विधि रुचि है दुहुँनि की तिहिं विधि करत अनूप॥**
**छिन-छिन बन की छवि नई नवल युगल के हेत।**
**समुझि बात सब जीय की सखि वृन्दा सुख देत॥**

निम्बार्क परम्पराके आचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यद्वारा प्रणीत 'महावाणी' ग्रन्थमें श्रीश्यामा-श्यामके सखीपरिकरोंमें

१-वृन्दावन-संतलीला, ध्रुवदासजी, छन्द १७७।
२-हरिकलाबेली, छन्द १५४।

अन्यतम सखी रंगदेवीजीके सखीमण्डलमें विशिष्ट प्रेममंजरीजीकी सखीके रूपमें वृन्दादेवीका वर्णन मिलता है। सन्त माधुरीदासजीने 'वृन्दावनमाधुरी' ग्रन्थमें वृन्दादेवीके द्वारा श्यामा-श्यामकी प्रसन्नताके लिये नवनिकुंजोंकी रचना एवं लताकुंजोंके व्यवस्थापनका वर्णन किया है। ऐसे ही, राधावल्लभ-सम्प्रदायके आचार्य गो० जतनलालजी (१८वीं सदी)-ने 'वृन्दावनशोभावर्णन' नामक कृतिमें वृन्दा सखीका बड़ा ही रमणीक वर्णन किया है—

**श्रीवृन्दावन वन सघन रचना कुंजप्रवीन।**
**देवी हैं वृन्दा सखी इच्छा हित ही कीन॥**
**कुंजन पति राजत सखी कोटिन जूथ अपार।**
**अपनी अपनी टहलमें सावधान सुकुमार॥**
**करत एक ही भाव सखी श्री योग तु माया।**
**एक रूप एक बेस सखी सब राजहिं काया॥**[1]

रूपगोस्वामीने ललितमाधव नाटकमें वनदेवीके नामसे वृन्दादेवीका अनेक स्थलोंपर वर्णन किया है। गोविन्द-लीलामृत काव्यमें—

**श्रीराधागोविन्दे आरयत सखी गने।**
**सेवेन श्रीवृन्दा देवी निया निज गने॥**
**भिन्न-भिन्न कुंजे वृन्दा तहाँ सेवा करे।**
**शुयाइला आनिया-आनिया समादरे॥**

इत्यादि पद्योंके द्वारा वृन्दादेवीकी महिमा गायी गयी है। नन्दगाँवसे कुछ दूरपर श्रीवृन्दाकुण्ड स्थित है, जो व्रजीय मान्यतानुसार वृन्दादेवीकी साधनास्थली है। यहाँ वर्तमानमें वृन्दादेवीका एक मन्दिर भी दर्शनीय है। श्रीहरिदासजीकी परम्पराके सातवें आचार्य ललितकिशोर देवजूके शिष्य वंशगोपालजीने अपने गुरुसे भक्तितत्त्वकी जिज्ञासा की, तब गुरुदेवने 'वाचनिका-सिद्धान्त' नामसे लोकप्रसिद्ध जो उपदेश उन्हें दिया, उसका प्रमुख प्रतिपाद्य यही है कि 'वृन्दावनवास वृन्दा सखीके अधीन है और भक्तिकी देवे वारी आप श्रीप्रियाजी हैं।'[2]

वृन्दादेवीके श्रीविग्रहकी श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभके द्वारा स्थापना किये जानेकी बात गोपालरायकृत 'वृन्दावनधामानुरागावली' नामक ग्रन्थके पुलिनाध्यायमें उल्लिखित है। वहाँ यह भी उल्लेख है कि कालान्तरमें वज्रनाभके द्वारा स्थापित ये विग्रह विलुप्त हो गये, तब पर्याप्त समय बीतनेके बाद रूपगोस्वामीने गोमाटीलेसे गोविन्ददेवजीके तथा वृन्दादेवीके स्वप्नादेशके अनुसार उनके श्रीविग्रहका ब्रह्मकुण्डसे प्राकट्य किया। इसका उल्लेख राधाकृष्णदासजीकी कृति साधनदीपिकाके श्लोक २ में मिलता है। ऐसे ही नरहरि चक्रवर्तीके भक्तिरत्नाकर, रानी कमलकुवँरिकी पोथी 'वृन्दावनवासिनकी वन्दना वनयात्रा' आदि ग्रन्थोंमें भी रूपगोस्वामीके माध्यमसे होनेवाले वृन्दादेवीके विग्रहके उद्धारकी घटना मिलती है। ब्रिटिश जिलाधिकारी एफ०एस० ग्राउसद्वारा प्रणीत 'मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' ग्रन्थसे जानकारी मिलती है कि वृन्दावनमें सेवाकुंजपर वृन्दादेवीका एक पुराना मन्दिर था। औरंगजेबके क्रूर शासनके कारण जब वृन्दावनसे बहुत-से विग्रह बाहर ले जाये गये थे, उस समय गोविन्ददेवके साथ-साथ कामवनसे वृन्दादेवीके विग्रहको भी बाहर ले जानेका प्रयत्न किया गया। जयपुर-नरेश जयसिंहने उनको रथारूढ़ करवाया, किंतु रथ आगे न बढ़ पाया, तब हाथियोंसे रथको खींचनेका उपक्रम किया गया, पर वह भी असफल रहा। उसी रातको वृन्दादेवीने स्वप्नादेशके द्वारा राजाको इस कार्यसे विरत कर दिया। तबसे लेकर आजतक वृन्दादेवी कामवनमें ही विराजमान हैं। वृन्दादेवीके परम उपासक गूदर-भूदरदासजी थे, जिन्होंने वृन्दादेवीसे सम्बन्धित अनेक भक्ति-रचनाएँ लिखीं तथा इन्हींकी प्रेरणासे हितपरमानन्दजीने वृन्दादेवीका अपने काव्यके माध्यमसे यशोगान किया। ऐसे ही, और भी बहुत-से सन्त-साधक, कविगण हुए हैं, जिन्होंने अपनी कविताके माध्यमसे भगवती वृन्दाका पावन यश लोकमें प्रसारित किया। अन्तमें, एक साधकोचित दृष्टिसे देखनेपर प्रतीति होती है कि वृन्दावन मात्र तुलसीका पवित्र वन ही नहीं है, अपितु यहाँका प्रत्येक लता-द्रुम वृन्दाका ही स्वरूप है, साधकोंने इस भावको स्ववाणीमें खूब लिखा और किशोरदासजीके शब्दोंमें गाया है—

**श्रीवृन्दावन मधि द्रुम जेते। तुलसी विविध रूप धरि तेते॥**

---

१-वृन्दावनशोभावर्णन, ६२ छन्द। २-वाचनिका-सिद्धान्त,पृ० ८।

# सनातन-धर्मके ज्ञान, ग्रहण और प्रसारकी आवश्यकता

**ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।**
**अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥**

(मुण्डकोपनिषद् २।२।११)

'यह अमृतस्वरूप (मृत्यु, विकार, दुःख, शोक आदिसे रहित नित्य सत्य पूर्ण परमानन्दघन) ब्रह्म ही इस विश्वके रूपमें लीला करता हुआ हमारे सामने, पीछे, दाहिने, बायें, नीचे, ऊपर—सर्वत्र प्रसारित हो रहा है। यह ब्रह्म ही सम्पूर्ण विश्वका सर्वश्रेष्ठ वरणीय सत्य स्वरूप है।'

**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥**

(शुक्लयजुर्वेद ४०।१—ईशावास्योपनिषद्)

'इस अखिल विश्वजगत्में इन्द्रिय-मन-बुद्धि-गोचर और इसका अंगीभूत जो कुछ भी जड़-चेतन जगत् है, वह सब एकमात्र ईश्वरसे व्याप्त है—उसका यथार्थ स्वरूप ईश्वर ही है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो, कहीं भी आसक्त मत होओ; धन—भोगपदार्थ किसका है?'

**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥**

(गीता ६।२९)

'सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाला योगयुक्त पुरुष सब (चराचर) भूतोंमें आत्माको और आत्मामें सब भूतोंको देखता है।'

**यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।**
**न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥**

(गीता १०।३९)

(भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—) 'अर्जुन! जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है, वह भी मैं ही हूँ। ऐसा चराचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझसे रहित (पृथक्) हो। यह सब मेरा ही (भगवान्का ही) स्वरूप है।'

**खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।**
**सरित् समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥**

(श्रीमद्भागवत ११।२।४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, जीव, दिशा, वृक्ष, नदी, समुद्र और जो कुछ भी चराचर भूत है, सब हरिका शरीर है—ऐसा मानकर अनन्य भावसे सबको प्रणाम करे।'

इस प्रकारके असंख्य वचन हमारे वेद, उपनिषद्, पुराण, शास्त्रोंमें भरे हैं। और यह है हमारे पूतप्राण ऋषियोंका 'अनुभूत सत्य'—उनकी 'प्रत्यक्ष उपलब्धिका स्वरूप'। यही 'सनातनधर्म' है। यही 'आर्य (हिन्दू) संस्कृति' है। भारतवर्ष इस पुण्य 'सत्य दर्शन'-का आदिक्षेत्र है। इसीसे भारतका दर्शनविज्ञान; साहित्य-कला; उसकी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय, व्यावहारिक और शारीरिक आदि सारी नीति-पद्धतियाँ; उसके राष्ट्रका, जातिका, समाजका, कुलका और व्यक्तिका धर्म आदि सब कुछ इस 'सनातन धर्म'-से ही अनुप्राणित है। इस धर्मको ही जीवनका परम आदर्श मानकर सारे सिद्धान्तों, मतों तथा नीति-नियमोंका निर्माण हुआ है। यही पवित्र 'सनातनधर्म' या 'हिन्दू-संस्कृति'-का स्वरूप है। एक ही शरीरके विभिन्न अंग-उपांगोंमें नाम, रूप तथा व्यवहारका भेद होते हुए भी जैसे सबमें एक ही आत्माकी नित्य निश्चित प्रत्यक्ष अनुभूति है, अतः सबका हित-साधन सहज स्वाभाविक है; वैसे ही विश्वके चराचर भूतमात्रमें राग-द्वेषरहित, हिंसा-घृणा-भय-शून्य, देहेन्द्रिय-मनकी अधीनतासे मुक्त, जाति-वर्गसम्प्रदायके भेदाभिमानजनित संकीर्णताओंसे सहज ही अतीत, शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि तथा चित्तके सरल भावसे एकमात्र दिव्य सत्य आत्माकी भगवान्की अनुभूति और उसी अनुभूतिके आधारपर नित्य भ्रमप्रमादादिसे रहित समाहितचित्तसे सहज ही सर्वकल्याणकर विचार-चिन्तन, व्यवहार-बर्ताव तथा आचार्यक्रियाका होना—'भारतीय हिन्दू-संस्कृति' या 'सनातनधर्म'-का जीवन-दर्शन है।

हमारे इस अनादि नित्य सनातनधर्ममें, जिसे आत्मधर्म या 'विश्वधर्म' कह सकते हैं—जड़में चेतन, ससीममें असीम, सादिमें अनादि, सान्तमें अनन्त, अनेकमें एक, विभक्तमें अविभक्त, भेदमें अभेद तथा परायेमें अपना—

'पर'-में 'स्व'-का प्रत्यक्ष बोध तथा दर्शन करानेकी शक्ति है। यही विश्वजनीन विश्वमानवधर्म—सनातनधर्म सारे संसारके प्राणिमात्रका लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक कल्याण-साधन करनेमें समर्थ है।

इसी सनातन धर्मके परलोक, पुनर्जन्म तथा जन्म-जन्मान्तरमें कर्म-फल-भोगका सिद्धान्त ऋषियोंद्वारा प्रत्यक्ष अनुभूत तथा मान्य है, जिसके कारण मनुष्य दुष्कर्म करनेमें डरता है।

बड़े दु:खका विषय है कि आज इसी 'सनातनधर्म' भारतीय आर्य (हिन्दू-)संस्कृति-की शिक्षाका अभाव ही नहीं हो रहा है, इसकी अवांछनीय अवहेलना और घोर तिरस्कार हो रहा है। इसीसे आज सर्वत्र मानवका 'स्व' अत्यन्त सीमित क्षेत्रमें संकुचित हुआ जा रहा है और क्षुद्र 'स्व'-के हितकी भ्रमपूर्ण मिथ्या धारणासे राग-द्वेषका आश्रय लेकर मनुष्य एक-दूसरेका विनाश करनेपर तुल गया है। इसीसे मोहावृत और विलास-विभ्रमरत मानव आज क्षुद्र स्वार्थके पीछे—स्वहितकी मिथ्या धारणासे पर-हित-नाशक मानो व्रत लेकर स्वयमेव 'आत्महत्या' कर रहा है। और इसीसे वह अनर्गल अवैध यथेच्छाचारको कर्तव्य-सा मानकर मनमाना दुराचार कर रहा है। अध्यात्मरहित भौतिक विकासने, जो घोर विनाशका पूर्वरूप है, आज विश्वमानवके ज्ञाननेत्रोंपर मोहका आवरण डालकर उसे प्राय: दृष्टिहीन या विपरीतदर्शी बना दिया है। 'अध्यात्म' लीलाभूमिकी भारत भी आज इस मोहसे आच्छन्न है। इसीसे 'धर्मनिरपेक्ष' (सेक्युलर)-के नामपर 'धर्मशून्य'-सिद्धान्तका पोषण करके वह मानवको पशु, पिशाच या राक्षस बनानेके अधम कार्य करनेमें प्रवृत्त है। शिक्षालयोंमें 'धर्मशिक्षा' बन्द है; छोटी उम्रसे लड़कियाँ तथा लड़के शिक्षाके नामपर उन शिक्षाक्षेत्रोंमें, शिक्षामन्दिरोंमें, विद्यालयोंमें, भेजे जाने लगे हैं, जहाँ धर्मका नाम नहीं है, आचारहीनताको गौरव दिया जाता है, प्रकारान्तरसे यथेच्छाचार, उच्छृंखलता एवं उद्दण्डताको उन्नतिका चिह्न बतलाया जाता है। गुरुजनोंका अपमान तथा बिना समझे-सोचे ही अपने धर्म, अपनी संस्कृति-सभ्यताके प्रति घृणा—कम-से-कम अवहेलना और उदासीनता करना सिखलाया जाता है। जहाँके दूषित वातावरणसे सच्ची धार्मिक शिक्षाके अभावसे 'सफाई'-के नामपर 'शुद्धि'-का, 'स्वतन्त्रता' के नामपर 'नियमानुवर्तिता', 'अनुशासन' और 'संयमशीलता', सुधारके नामपर कुलपरम्परागत 'सदाचार'-का, 'प्रगति'-के नामपर 'भोजनकी शुद्धि' आदि सद्गुणोंका अबाध विनाश किया जा रहा है और 'अभक्ष्य आहार' तथा 'असदाचार'-में उत्साह तथा उल्लासयुक्त प्रवृत्ति करवायी जा रही है और इसे 'विकास' माना जाता है! यही विकासका (विनाशका) क्रम विश्वविद्यालयोंकी उच्च शिक्षातक उत्तरोत्तर उन्नत होता चलता है। धर्म तथा आचारकी शिक्षा न घरमें मिलती है, न बाहर।

इसीके साथ-साथ उन्नतिके नाम पर 'सह भोजन', 'सह-शिक्षा', होटलोंमें सब कुछ तथा सब तरहसे बने हुए, पदार्थोंका 'अनर्गल आहार', 'उच्छिष्ट भोजन', 'निर्लज्ज' तथा 'अमर्यादापूर्ण डान्स' आदि चलते हैं। 'सिनेमा' तथा इन्द्रियोंमें 'अनुचित उत्तेजना पैदा करनेवाला साहित्य' अपना अलग प्रभाव डालते हैं। परिणाम यह होता है कि आज कोई 'धर्म'-के नामसे डरता है, कोई घृणा करता है, कोई सम्प्रदाय कहकर मखोल उड़ाता है, कोई धर्मकी बात सोचकर व्यर्थ समय नष्ट करना समझता है और कोई-कोई तो धर्मको उन्नतिका सर्वथा विघातक समझते हैं। धर्महीन विचार, धर्महीन शिक्षा, धर्महीन बाहरी छोटे-बड़े आचार-व्यवहार—सब मिलकर आज मनुष्यको मानवतासे गिराकर उसे पशुता और असुरतामें परिणत कर रहे हैं! इस प्रकार द्रुतगतिसे जो 'धर्महीन समाज'-का निर्माण हो रहा है, इसका परिणाम कितना भयानक होगा, इसपर गम्भीरतासे विचार करनेकी आवश्यकता है!

भारतवर्षका यह सनातनधर्म ही था, जो विश्व-चराचरमें एक भगवान् या एक आत्माके दर्शन कराकर सबमें सहज प्रेमका विस्तार कर सकता था। प्रेम त्यागसे होता है और अपने हितके लिये मनुष्य सहज ही त्याग करता है। जब सर्वत्र आत्मदृष्टि हो जाती है, तो सबका हित ही अपना हित हो जाता है; फिर कैसे कोई

किसीका अहित-चिन्तन या अहित-साधन कर सकता है? इसीसे मनीषियोंका यह मत है कि 'जगत्‌के सब मत नष्ट हो जायँ, तो हर्ज नहीं है; सबमें एक आत्माके दर्शन करनेवाला यह विश्वमानवका 'सनातनधर्म' जीवित रहेगा तो, सब जीवित रहेंगे—सबका कल्याण होगा। पर यही धर्म यदि नहीं रहेगा, (यद्यपि इसकी सम्भावना नहीं है; क्योंकि यह 'सत्य' है और 'सत्य' कभी मरता नहीं, वह किसी-न-किसी अंशमें रहता ही है) तो समस्त विश्वका विध्वंस हो जायगा और वर्तमानमें इसी सनातनधर्मका ह्रास हो रहा है। इस 'सनातनधर्म' और 'हिन्दू-संस्कृति'-के स्वरूपको जानने-माननेवालोंकी संख्या दिनोंदिन घटी जा रही है, इसकी शिक्षाका अभाव हुआ जा रहा है। सनातनधर्म तथा सनातन-हिन्दू-इतिहासका अज्ञान बढ़ा जा रहा है। यह विश्वके भविष्यके लिये बड़े भारी खतरेकी चीज है। अतः यदि विश्वकल्याणके साथ ही भारतको तथा मनुष्यमात्रको राष्ट्रका, देशका, समाजका तथा व्यक्तिगत अपना कल्याण इच्छित है, तो इस सनातनधर्मको समझना, समस्त शिक्षालयोंके शिक्षाक्रममें सनातनधर्मकी शिक्षाकी व्यवस्था करना; सनातनधर्मकी महत्ता, उदारता, सर्वजीवहितैषिताकी सत्शिक्षाका प्रचार-प्रसार करना, इसकी शिक्षाका ग्रहण करना, इसे जीवनमें क्रियारूपमें उतारना और समस्त विश्वको इसका मंगल-संदेश देना परम आवश्यक और अविलम्ब अनिवार्य कर्तव्य है!—**श्रीभाईजी**

*बोध-कथा—*

## पीड़ितकी सेवा करना ही सच्ची उपासना है

**महाभारतके युद्धका प्रसंग है। इस युद्धके दौरान पाण्डव भाइयोंने देखा कि उनके अग्रज युधिष्ठिर रोज रातको शिविर छोड़कर अकेले कहीं जाते हैं। युधिष्ठिरका कहना था कि वे व्यक्तिगत उपासनाके लिये जाते हैं, पर पाण्डवोंको यह नहीं मालूम था कि युधिष्ठिर जाते कहाँ हैं। युधिष्ठिर प्रातः तीसरे प्रहरतक वापस लौट आते और कुछ देर विश्राम करनेके बाद युद्धके लिये तैयार हो जाते। एक दिन भीम, नकुल, सहदेव आदिने तय किया कि वे इस रहस्यका पता लगाकर ही रहेंगे। उस रात युधिष्ठिरके शिविरके बाहर निकलते ही वे चुपचाप उनके पीछे लग गये। मद्धिम पड़ते प्रकाशमें उन्होंने देखा कि युधिष्ठिर युद्धस्थलकी ओर जा रहे हैं। पीछे आ रहे तीनों भाइयोंसे अनजान युधिष्ठिर युद्धस्थलपर पहुँचकर वहाँ गिरे घायलोंकी सेवा-शुश्रूषामें लग गये। वे अपने साथ अन्न-जल, घावोंपर लगानेकी औषधि चादरके पीछे छिपाकर लाये थे। रणभूमिमें गिरा घायल सैनिक कौरव पक्षका हो या पाण्डव पक्षका, युधिष्ठिर हर एकके पास गये और उनकी जितनी भी सेवा या उपचार आदि कर सकते थे, उन्होंने किया। किसीके घावोंपर मरहम लगाया, किसीको पानी पिलाया, किसीको सान्त्वना दी तो किसीको अन्न-आहार दिया। यह देखकर तीनों भाइयोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वे युधिष्ठिरके सामने आये और हाथ जोड़कर बोले—'तात! आप यहाँ छिपकर क्यों आये?' युधिष्ठिरने कहा—'मेरे प्रिय अनुजो! यदि मैं यहाँ भेष बदलकर नहीं आता तो ये अपनी पीड़ा या दुःख मुझसे खुलकर नहीं कह पाते और मैं सेवाके सौभाग्यसे वंचित रह जाता।' इसपर भीमने कहा—'फिर भी भ्राता! शत्रु तो शत्रु है। क्या उसकी सेवा करना उचित है?' युधिष्ठिर बोले—'बन्धु! पाप और अधर्म शत्रु होता है, मनुष्य नहीं। आत्माका आत्मासे क्या द्वेष!' यह सुनकर भीम सन्तुष्ट हो गये, किंतु नकुलके मनमें अभी भी एक जिज्ञासा थी। उन्होंने युधिष्ठिरसे कहा—'तात! आप तो कहते थे कि यह समय आपकी उपासनाका है? आप उपासना करने कहाँ जाते हैं?' तब युधिष्ठिरने कहा—'अभी यही मेरा उपासना-स्थल है। दुखियों-पीड़ितोंकी सेवा करना ही सच्ची उपासना है और मैं इस वक्त वही कर रहा हूँ।' यह सुनकर तीनों भाई युधिष्ठिरके समक्ष नतमस्तक हो गये।**

# अष्टमूर्तिस्तव

## [ संजीवनीविद्या प्रदान करनेवाली स्तुति ]

*[महर्षि भृगुके वंशमें उत्पन्न श्रीशुक्राचार्य महान् शिवभक्तोंमें परिगणित हैं। इन्होंने काशीपुरीमें आकर एक शिवलिंगकी स्थापना की, जो शुक्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए इन्होंने बहुत कालतक घोर तप किया। उनकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शिव लिंगसे साक्षात् प्रकट हो गये। भगवान्का दर्शनकर शुक्राचार्य हर्षसे पुलकित हो उठे और उस समय उन्होंने हर्ष-गद्गद वाणीसे जिस स्तोत्रद्वारा भगवान् शिवका स्तवन किया, वही स्तोत्र अष्टमूर्तिस्तव अथवा मूर्त्यष्टकस्तोत्र कहलाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान (क्षेत्रज्ञ या आत्मा), चन्द्रमा और सूर्य—इन आठोंमें अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान—ये शिवकी अष्टमूर्तियोंके नाम हैं। आठ श्लोकोंवाली इस स्तुतिके एक-एक श्लोकमें पृथक्-पृथक् रूपसे उपर्युक्त एक-एक स्वरूपकी वन्दना है। शुक्राचार्यकी इस स्तुतिसे मृत्युंजय भगवान् शिव इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मृत व्यक्तियोंको भी जीवित करनेवाली संजीवनीविद्या उन्हें दे दी, जिसके बलपर शुक्राचार्य जिसको चाहते थे, उसे जीवित कर देते थे। भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही शुक्र ग्रहोंमें प्रतिष्ठित हुए, सभी प्रकारका शुभ फल देनेमें समर्थ हुए और भगवान् शिव-पार्वतीके प्रिय पुत्ररूपमें उनकी प्रसिद्धि हुई। श्रीशिवमहापुराणमें प्राप्त शुक्राचार्यद्वारा की गयी वह स्तुति इस प्रकार है—**सम्पादक**]*

**त्वं भाभिराभिरभिभूय तमः समस्त-**
**मस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम्।**
**देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय**
**लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते ॥**

हे जगदीश्वर! आप अपने तेजसे समस्त अन्धकारको दूरकर रातमें विचरण करनेवाले राक्षसोंके मनोरथोंको नष्ट कर देते हैं। हे दिनमणे! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें सूर्यरूपसे प्रकाशित हो रहे हैं, आपको नमस्कार है।

**लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभि-**
**र्निर्भासि कौ च गगनेऽखिललोकनेत्रः।**
**विद्राविताखिलतमाः सुतमो हिमांशो**
**पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते॥**

हे हिमांशो! आप पृथ्वी तथा आकाशमें समस्त प्राणियोंके नेत्र बनकर चन्द्ररूपसे विराजमान हैं और लोकमें व्याप्त अन्धकारका नाश करनेवाले एवं अमृतकी किरणोंसे युक्त हैं। हे अमृतमय! आपको नमस्कार है।

**त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः**
**कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह।**
**स्तब्धप्रभंजनविवर्द्धितसर्वजंतोः**
**संतोषिताहिकुलसर्वग वै नमस्ते॥**

हे भुवनजीवन! आप पावनपथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपास्यदेव हैं। इस जगत्में

आपके बिना कौन जीवित रह सकता है! आप वायु-रूपसे समस्त प्राणियोंका वर्धन करनेवाले और सर्प-कुलोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं। हे सर्वव्यापिन्! आपको नमस्कार है।

**विश्वैकपावक नतावक पावकैक-**
**शक्ते ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम्।**
**प्राणिष्यदो जगदहो जगदंतरात्मं-**
**स्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो नमस्ते॥**

हे विश्वके एकमात्र पावनकर्ता! हे शरणागतरक्षक! यदि आपकी एकमात्र पावक (पवित्र करनेवाली एवं दाहिका) शक्ति न रहे, तो मरनेवालोंको मोक्ष प्रदान कौन करे? हे जगदन्तरात्मन्! आप ही समस्त प्राणियोंके भीतर वैश्वानर नामक पावक (अग्निरूप) हैं और उन्हें पग-पगपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है।

**पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र**
**चित्रं विचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम्।**
**विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ**
**पानीयगाहनत एतदतो नतोऽस्मि॥**

हे जलरूप! हे परमेश! हे जगत्पवित्र! आप निश्चय ही विचित्र उत्तम चरित्र करनेवाले हैं। हे विश्वनाथ! आपका यह अमल पानीय रूप अवगाहन-मात्रसे विश्वको पवित्र करनेवाला है, अतः आपको नमस्कार करता हूँ।

**आकाशरूपबहिरंतरुतावकाश-**
**दानाद्विकस्वरमिहेश्वर विश्वमेतत्।**
**त्वत्तः सदा सदय संश्वसिति स्वभावात्**
**संकोचमेति भवतोऽस्मि नतस्ततस्त्वाम्॥**

हे आकाशरूप! हे ईश्वर! यह संसार बाहर एवं भीतरसे अवकाश देनेके ही कारण विकसित है, हे दयामय! आपसे ही यह संसार स्वभावतः सदा श्वास लेता है और आपसे ही यह संकोचको प्राप्त होता है, अतः आपको प्रणाम करता हूँ।

**विश्वंभरात्मक बिभर्षि विभोऽत्र विश्वं**
**को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमोऽरिः।**
**स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष**
**स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम्॥**

हे विश्वम्भरात्मक [पृथ्वीरूप]! हे विभो! आप ही इस जगत्का भरण-पोषण करते हैं। हे विश्वनाथ! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अन्धकारका विनाशक है। हे अहिभूषण (सर्पोंको आभूषणरूपमें धारण करनेवाले)! मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारको आप दूर करें, आप स्तवनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, अतः आप परात्परको मैं नमस्कार करता हूँ।

**आत्मस्वरूप तव रूपपरंपराभि-**
**राभिस्ततं हर चराचररूपमेतत्।**
**सर्वांतरात्मनिलय प्रतिरूपरूप**
**नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते॥**

हे आत्मस्वरूप! हे हर! आपकी इन रूप-परम्पराओंसे यह सारा चराचर जगत् विस्तारको प्राप्त हुआ है। सबकी अन्तरात्मामें निवास करनेवाले हे प्रतिरूप! हे अष्टमूर्ते! मैं भी आपका जन हूँ, मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ।

**इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबंधुबंधो**
**युक्तः करोषि खलु विश्वजनीनमूर्ते।**
**एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत**
**सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि॥**

हे दीनबन्धो! हे विश्वजनीनमूर्ते! हे प्रणतप्रणीत (शरणागतोंके रक्षक)! हे सर्वार्थसार्थपरमार्थ! आप इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त हैं और यह विस्तृत जगत् आपसे व्याप्त है, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

**[ शिवपुराण-रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड ]**

---

* यह स्तुति किंचित् शब्दान्तरके साथ स्कन्दमहापुराणके काशीखण्डके अन्तर्गत भी प्राप्त होती है।

*तीर्थ-दर्शन—*

# ओरछाधाम—जहाँ विराजे हैं राजाराम

( श्रीइन्दल सिंहजी भदौरिया )

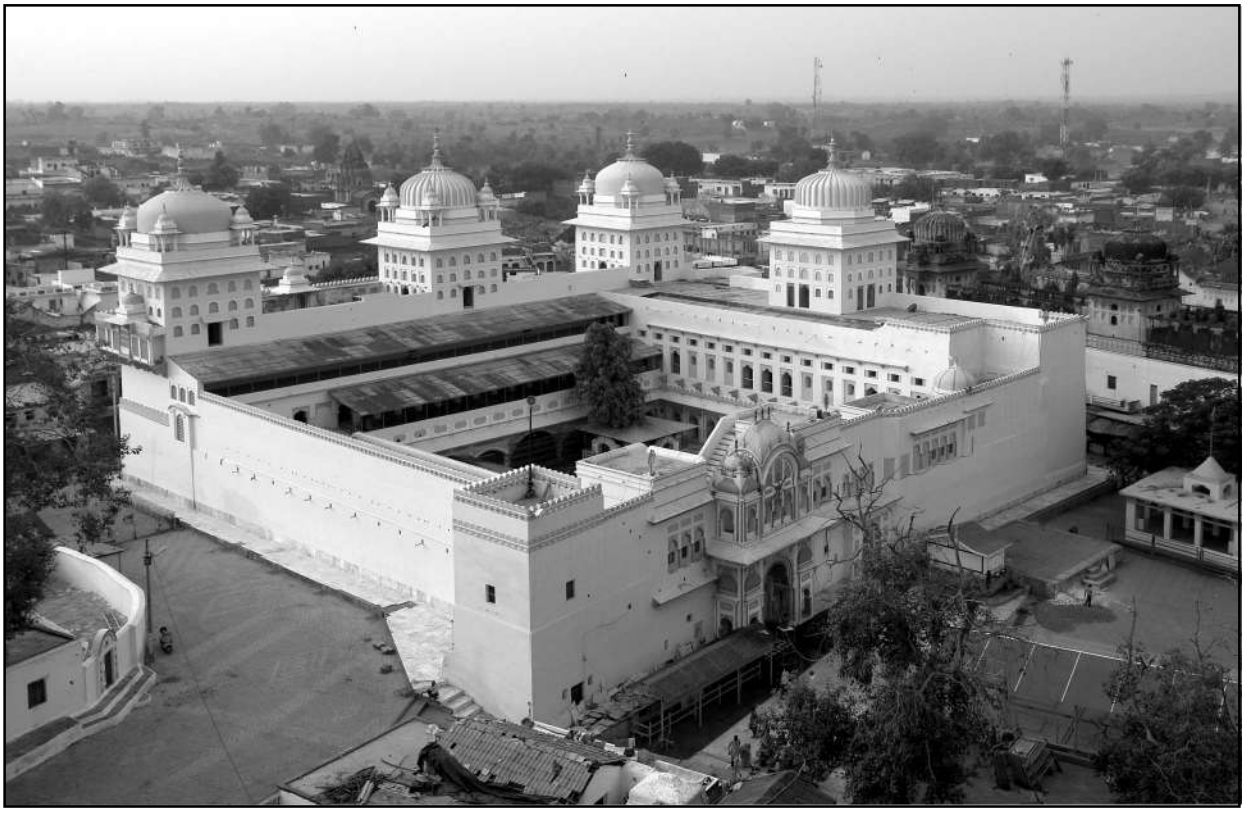

**रामराजा सरकार के दो निवास हैं खास।**
**दिवस ओरछा रहत हैं रैन अयोध्या वास॥**

यह लोकप्रिय लोकोक्ति समूचे बुन्देलखण्डमें प्रचलित है और यही प्राणपण स्तुत्य सूक्ति रामराजा मन्दिर ओरछाके द्वारपर भी सुशोभित हो रही है।

वीरप्रसूता बुन्देलखण्डकी पावनतम वन्दनीय विरासत-वंशावलीमें ओरछाका नाम स्वर्णिम अक्षरोंमें अंकित है। एक समयमें यह ओरछाधाम बुन्देला राज्यकी राजधानी थी, लेकिन बदलते परिवेशमें आज ओरछा नगर पंचायत (टाउन एरिया)-के रूपमें मध्यप्रदेशके निवाड़ी जिलेमें बेतवा नदीके पुनीत तटपर स्थित है। जो पूर्व जनपद टीकमगढ़से ८० किलोमीटर और उत्तरप्रदेशकी ऐतिहासिक नगरी झाँसीसे लगभग १५ किलोमीटरकी दूरीपर बसा हुआ है।

ओरछाधामकी महिमाको यदि हम अतीतके आइनेमें झाँककर देखें तो पाते हैं, यहाँका पुनीत इतिहास, धर्मध्वजाधारी धरोहर सोलहवीं सदीकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। बताते हैं कि ओरछाकी स्थापना बुन्देला राजा रुद्रप्रतापसिंह जूदेवने की थी। इतिहासकारोंके अनुसार राजा रुद्रप्रतापसिंह जूदेव बुन्देलाका सिकन्दर लोदीसे भी युद्ध हुआ था। ये अपने उद्‌भट शौर्य और पराक्रमके लिये सुप्रसिद्ध थे।

ओरछाके प्रमुख अनुपम आकर्षण केन्द्र—

## श्रीराजाराम मन्दिर

श्रीराजाराम मन्दिर स्थापनाकी कथा अप्रतिम, अकल्पनीय, अलौकिक, अनुपम, अद्‌भुत और बड़ी रोचक एवं रहस्यमयी है। इसीलिये वह बुन्देलखण्डके कण-कण और जन-जनमें अमिट रूपमें रची-बसी है।

सुविज्ञ सूत्रोंके अनुसार अपनी अचल भक्तिभावनाके लिये सुप्रसिद्ध बुन्देला राजा मधुकरशाह और उनकी धर्मपत्नी रानी गणेशकुँवरि राजे (जो ग्वालियर जिलेकी परमार राजपूत कन्या थीं)-के शासनकालका यह पावन प्रसंग है, जिसके कारण ओरछामें श्रीराजारामजीका

मन्दिर स्थापित हुआ।

राजा मधुकरशाह परम कृष्णभक्त थे और रानी श्रीरामकी अनन्य उपासिका थीं। इनकी श्रीरामजीके प्रति अमित आस्थाका उल्लेख पवित्र ग्रन्थ भक्तमालमें भी है। जनश्रुतियोंके अनुसार एक बार ओरछानरेश मधुकर शाह, जो श्रीकृष्णजीके अनन्य भक्त थे, ने अपनी महारानी गणेशकुँवरिसे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनहेतु वृन्दावन चलनेको कहा, लेकिन रानी परम रामभक्त थीं, इसलिये उन्होंने कहा कि मैं तो अयोध्या जाना चाहती हूँ। अच्छा हो, आप भी अयोध्या मेरे साथ चलें। राजा मधुकरशाहने कहा कि श्रीकृष्णदर्शनका मेरा पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम है, अत: मैं वृन्दावन जा रहा हूँ। रानीजीने कहा कि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी श्रीरामजीके दर्शन करनेहेतु अयोध्या प्रस्थान करना चाहती हूँ।

रानीकी बात सुनकर राजा मधुकरशाहने व्यंग्यमें कह दिया कि आपको बार-बार दर्शनके लिये अयोध्या जाना पड़ता है। आप तो श्रीरामकी महान् उपासिका हैं, तो श्रीरामजीको ओरछा क्यों नहीं बुला लेतीं! हँसीमें ऐसा कहकर राजा मधुकरशाह तो वृन्दावन चले गये और महारानीने उनसे आज्ञा लेकर अयोध्याके लिये प्रस्थान किया।

अयोध्या आकर रानीने उस समय वहाँ निवास कर रहे सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीका भी आशीर्वाद लिया और सरयूके पावन तटपर अपना साधना-शिविर स्थापितकर श्रीरामजीकी साधनामें लीन हो गयीं।

इधर ओरछामें राजा मधुकरशाह जब वृन्दावनसे लौट आये, तब उन्होंने महारानीजीको विशेष दूतद्वारा तुरन्त लौट आनेका सन्देश भेजा। लेकिन महारानी फिर भी नहीं लौटीं। कई महीनोंकी प्रतीक्षाके बाद राजा मधुकरशाहने पुन: अपने एक दूतके हाथों एक गोपनीय पत्र भेजा। उसमें भी उन्होंने फिर वही व्यंग्य-विनोदसे युक्त उलाहनाभरा सन्देश लिखा कि, 'लगता है महारानीजी! आप रामललाको लेकर ही लौटेंगी।'

इसे पढ़कर रानी श्रीरामजीसे ओरछा चलनेकी प्रबल प्रार्थना पुन: करने लगीं। लेकिन कोई सकारात्मक लक्षण न दिखनेसे वे अत्यन्त वेदनाग्रस्त होकर सरयूमें अपनी जीवनलीला समाप्त करनेका विचार करने लगीं।

सं० १६३१ मंगलवार, रामनवमीके शुभमुहूर्तमें जहाँ अयोध्यामें एक तरफ गोस्वामी तुलसीदासजीके करकमलोंसे श्रीरामचरितमानसका प्राकट्य ग्रन्थावतारके रूपमें हुआ, वहीं दूसरी तरफ भक्तिभाव समाधि-अवस्थामें जब महारानी गणेशकुँवरिने निराश होकर अपने प्राण त्यागनेकी भावनासे सरयूमें जलसमाधि लेनी चाही, उसी समय उनके हाथोंमें श्रीराजारामका अद्भुत विग्रह प्रकट हो गया। उसी शुभमुहूर्तमें श्रीरामने रानीको सरयूजलके मध्य दर्शन भी दिये।

तभी रानीने श्रीरामजीसे ओरछा चलनेकी प्रार्थना की, इसपर श्रीरामने कहा, मेरी यह यात्रा पैदल एवं पुष्य नक्षत्रमें ही होगी। इसके अतिरिक्त जहाँ एक जगह मूर्ति रख दी जायगी, मूर्ति वहीं अचल हो जायगी। इसके अलावा मैं राजाके रूपमें दिनमें वहाँ रहूँगा और रात्रि-विश्राम अयोध्यामें करूँगा।

रानी गणेशकुँवरिने श्रीरामजीकी सभी शर्तोंको स्वीकार कर लिया और प्रसन्नतासे जो श्रीराजारामजीकी मूर्ति सरयू मध्यसे प्राप्त हुई थी, उसे लेकर अपनी पैदल यात्राकी सूचना राजा मधुकरशाहको भेज दी।

राजा मधुकरशाहने अति प्रसन्नताके साथ तुरंत श्रीराजारामजीके लिये भव्य चतुर्भुज मन्दिरका निर्माण द्रुतगतिसे प्रारम्भ करा दिया।

महारानी गणेशकुँवरिने राजा श्रीरामजीको पूरे राजकीय सम्मानके साथ अपनी सैनिक छावनीके साथ पुष्य नक्षत्रमें पैदल ही यात्राका शुभ प्रस्थान किया। जानकार सूत्रोंके अनुसार लगभग १३ माहकी पदयात्राके बाद महारानी गणेशकुँवरि ओरछा पहुँचीं। राजा मधुकरशाहने श्रीराजारामजीका शानदार स्वागत किया।

**मधुकरशा महाराज की रानी कुँवरि गणेश।**
**अवधपुरी से ओरछे लाई अवध नरेश॥**

निर्णय लिया गया कि शुभमुहूर्तमें राजारामजीकी स्थापना करोड़ों रुपयेकी लागतसे बने विशाल मन्दिरमें

की जायगी। तबतक श्रीराजारामजीकी मूर्तिको महारानीजीके महलमें रख दिया जाय। दूसरे दिन शुभमुहूर्तमें जब श्रीराजारामजीके विग्रहको नवनिर्मित चतुर्भुज मन्दिरमें ले जानेकी तैयारी हुई, तो तमाम प्रयासोंके बाद भी श्रीराजारामजीकी मूर्ति वहाँसे नहीं हिली। फलस्वरूप महारानी महलमें जहाँ मूर्ति रखी गयी थी, वहीं स्थापित हो गयी। नवनिर्मित चतुर्भुज मन्दिर आज भी मूर्ति-विहीन है।

श्रीराजारामजीका मुख राजमहलकी तरफ है। तभीसे उन्हें राजाराम सरकार कहा जाने लगा और पूर्ण राजकीय सम्मानसे उनकी वहीं पूजा-अर्चना होने लगी। सदियोंसे चली आ रही राजकीय परम्पराके अनुसार आज भी श्रीरामजीकी मूर्तिको सुबह-शाम गार्ड ऑफ ऑनरके तहत पुलिस बलद्वारा सलामी दी जाती है। वहाँ राजाराम सरकारकी जयकार लगायी जाती है।

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं लोकसंस्कृति आदि अन्य आकर्षणोंका केन्द्रबिन्दु ओरछा-महल मन्दिर-परिसरके समीप लाला हरदौलजूकी समाधि है। इनके पवित्र चरित्र और त्याग, बलिदानकी कहानियाँ समूचे बुन्देलखण्डमें प्रचलित हैं। हरदौलजूको जननायक मानते हुए बुन्देलखण्डके प्रमुख स्थानों एवं ग्रामीण इलाकोंमें हरदौल चबूतरे बने हैं। यहाँ विवाह आदि पारिवारिक उत्सवोंपर इनकी पूजा की जाती है।

इसीके समीप दो ऊँची मीनारें हैं, जिन्हें सावन-भादोंके नामसे जाना जाता है। बताया जाता है कि इन्हीं मीनारोंके पास सुरंगें थीं, जहाँसे बुन्देला राजा गुप्तरूपसे आवागमन करते थे। फिलहाल ये सुरंगें बन्द कर दी गयी हैं।

बेतवा नदी अपनी प्राकृतिक पर्वतीय अनुपम छटासे दर्शकोंका मन मोह लेती है। पुराने पुलको पारकर शहरके इस भू-भागमें अति सुसज्जित महल, गेस्टहाउस भी हैं। इसके अलावा राजमहल, शीशमहल, चारमहल, जहाँगीर महल, रायपरवीन महल आदि प्रमुख हैं। ये बुन्देला राजपूत राजाओंकी सराहनीय वास्तु शिल्पकलाके जीवन्त उदाहरण हैं। भव्य महल, मोहक कलाकृतियाँ, जानवरोंकी मूर्तियाँ, बेलबूटे आदि स्वर्णिम अतीतके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

बुन्देला क्षत्रियोंका शासन १७८३ में समाप्त होनेके बाद ओरछा गुमनामीमें चला गया था। स्वतन्त्रता-संग्रामके दिनोंमें यह भू-भाग पुनः अपने क्रान्तिकारी तेवरोंमें लौटा। अमर शहीद चन्द्रशेखर आजादने ओरछाके समीप वनों और गाँवोंको अपनी कार्यस्थली बनाया। आज उनकी पावन स्मृतिमें ओरछाके बाहर अमरसेनानी चन्द्रशेखर आजादका स्मारक बना हुआ है।

इस परमपावन भूमिमें कविकुलभूषण सन्तशिरोमणि बाबा गोस्वामी तुलसीदासजीने पधारकर श्रीराजारामजी सरकारके समक्ष रामचरितकी कथाकी एक माहतक पवित्र पीयूष-धारा प्रवाहित की थी। इस कथाके यजमान महाराजा मधुकरशाह एवं महारानी गणेशकुँवरि थे। यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजीके नामपर बेत्रवती संगम तटपर तुलसीघाट बना हुआ है। बताया जाता है कि ओरछा-प्रवासके समय वे इसी स्थानपर नित्य स्नान करते थे।

आज बुन्देलखण्डकी परम पवित्र रजकणमें यह उद्घोष गूँज रहा है—

**राजा रामजीका है ओरछा धाम।**
**वीरप्रसूती बेतवा बहती जहाँ अभिराम॥**
**यहीं हरबोलोंने आजादीका दिया पैगाम।**
**रामराज्यके पावन प्रतीकको शत-शत प्रणाम॥**

**तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।**
**धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥**

अर्थात् तर्ककी कहीं स्थिति नहीं है, श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, एक ही ऋषि नहीं है जिसका मत प्रमाण माना जाय तथा धर्मका तत्त्व गुहामें निहित है अर्थात् अत्यन्त गूढ़ है; अतः जिस मार्गसे महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग श्रेष्ठ है। [ **महाभारत, वनपर्व ३१३। ११७** ]

*आरोग्य-चर्चा—*

# आहार-विज्ञान

( प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़ )

जिस प्रकार खम्भोंसे मकानकी स्थिरता बनी रहती है, उसी तरह आहार, विहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य—इन चारोंके समुचित प्रयोगसे शरीर धारित रहता है। इसमें आहारका महत्त्व सर्वोपरि है। मनके अनुकूल वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श और समुचित रुचिकर अन्नपानको प्राण कहा जाता है। अन्नरूपी ईंधनपर ही जठराग्निका अस्तित्व निर्भर होता है। समृद्ध अन्नपान मनकी शक्ति बढ़ाता है और शरीरके धातु समुदायमें बल एवं वर्ण प्रदान करता है, इन्द्रियोंको प्रसन्न रखता है और उन्हें अपने कार्योंके सम्पादनमें सक्षम करता है। इसके विपरीत जो अन्नपान मनके अनुकूल न हो, जिसका वर्ण, गन्ध, अनुकूल न हो, वह अहितकर होता है। आहारकी मात्रा जठराग्निपर निर्भर करती है। जितनी मात्रामें मनुष्यद्वारा खाया हुआ भोजन उसकी प्रकृति अथवा शरीरकी स्वाभाविक गतिविधिमें किसी प्रकारकी बाधा न पहुँचाते हुए यथासमय पच जाय, वही उसके लिये आहारकी उचित मात्रा होती है।

**आहारकी मात्रा—**किसी भी व्यक्तिके आहारकी मात्रा एक-सी नहीं रहती। कभी यह बढ़ जाती है, कभी कम हो जाती है। भोजन उतना ही करना चाहिये, जितना कि बिना किसी उपद्रवके आसानीसे पच जाय। इतनी मात्रामें ही खाना चाहिये कि पार्श्वमें पीड़ा न हो, उदरमें अधिक भार न मालूम हो, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न रहें, उठने-बैठने, चलने, खड़े होने, सोने और बातचीतमें कोई कष्ट न हो। सुबहका भोजन शामतक और शामका भोजन सुबहतक पच जाना चाहिये। जिस भोजनसे शरीरके बलकी वृद्धि हो, वही मात्रा भोजनकी उपयुक्त मात्रा होती है। प्रातःकालका भोजन सबसे गुरु, दोपहरका भोजन उससे कम गुरु और रातका भोजन लघु होना चाहिये।

**भोजन करनेसे पहले रखें ध्यान—**भोजन करनेसे पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि मल-मूत्रका निर्हरण हो गया है। वहाँके भी दोष अपने-अपने मार्गकी ओर प्रवृत्त हो गये हैं, भूख लग चुकी है, अपान वायुके अनुकूल ढंगसे निकलनेपर, जठराग्नि प्रदीप्त होनेपर इन्द्रियोंके निर्मल हो जानेपर तथा शरीरके हलका हो जानेपर भोजन करना चाहिये। आमाशयको चार भागोंमें बाँटकर दो भागोंको ठोस द्रव्य, एक भागको पेय द्रव्य तथा शेष चौथे भागको वात-पित्त-कफ—इनके लिये खाली छोड़ देना चाहिये—

**आहारस्य च भागौ द्वौ तृतीयमुदकस्य च।**
**वायोः सञ्चरणार्थाय चतुर्थमवशोषयेत्॥**

**भोजन करनेकी विधि—**भोजन, स्नान करनेके उपरान्त करना चाहिये। भोजन करनेके बाद स्नान नहीं करना चाहिये। भोजन एकान्तमें करना चाहिये। भोजन करनेसे पहले हाथ और पैर अवश्य धोने चाहिये। पैर धोकर भोजन करनेसे आयु बढ़ती है—

**आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत····।**
**आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥**

(मनुस्मृति ४।७६)

पितरों, देवताओं, अतिथियों, वृद्ध तथा बच्चोंको तृप्त कराकर पशु-पक्षियोंका ध्यान करके परिवारजनोंके भोजनकी व्यवस्था करके और अपने शरीरकी स्थितिका विचार करके, भोजनकी निन्दा न करते हुए आहार ग्रहण करना चाहिये। ऐसी वेदकी आज्ञा है—**'अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्।'** (तैत्तिरीयोपनिषद्) तीव्र भूख लगे होनेपर ही भोजन करना चाहिये। भगवान्‌को अर्पण करके जो भोजन किया जाता है, वह भगवत्प्रसाद हो जाता है।

जो भी भोजन किया जाता है, खानेके उपरान्त उसके तीन भाग हो जाते हैं—स्थूल, सार तथा सूक्ष्म। स्थूल भागसे मलका निर्माण, सार भागसे धातुओंका निर्माण और सूक्ष्म भागसे मनका निर्माण होता है। भोजनकी गुणवत्ता हमारे मनको प्रभावित करती है। इसलिये हमारा चिन्तन हमारे आहारपर निर्भर करता है। भोजन करते समय क्षेत्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, कालशुद्धि एवं भावशुद्धिका ध्यान रखे। वेदकी आज्ञा है—**'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।'** (छान्दोग्योपनिषद् ७।२६।२)

भोजन बनानेवालेको अगर क्रोध आ रहा है, तो खानेवालेको भी क्रोध आयेगा। भोजन सदैव विधिपूर्वक करना चाहिये।

**इस क्रमका पालन करें**—केला, नारियल, आम, मोदक, हलुवा आदि पदार्थ; जो कि गुरु, स्निग्ध और मधुर हों, उन्हें भोजनके प्रारम्भमें खाना चाहिये। इसके विपरीत गुणवाले द्रव्य भोजनके अन्तमें खाने चाहिये। अम्ल एवं लवणप्रधान द्रव्योंको भोजनके मध्यमें सेवन करना चाहिये। हलके, तीखे, कड़वे तथा रूखे पदार्थ अन्तमें खाने चाहिये।

**अनुपान**—प्रातःकाल भोजनके साथ उष्ण जलका प्रयोग और दोपहरके भोजनके साथ छाछका प्रयोग तथा रात्रिको दूधका सेवन करना चाहिये। गेहूँ तथा जौ, दही तथा मधुका अनुपान शीतल होता है। पिष्टीसे बने भक्ष्य पदार्थोंका अनुपान गुनगुना जल है और विविध प्रकारके मूँग, उड़द आदिद्वारा बनाये गये पदार्थोंका अनुपान दहीका पानी अथवा खट्टी काँजी होता है। ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंमें श्वास, कास, उरःक्षत, पुराने जुकाममें भोजनके साथ जल नहीं लेना चाहिये। परिश्रम करनेवाले, धूपका सेवन करनेवाले और बीमारीसे कमजोर व्यक्ति और बालक तथा वृद्धके लिये दूधका प्रयोग हितकर होता है।

**इनको मिलाकर भोजन न करें**—खट्टी वस्तुओंका सेवन दूधके साथ नहीं करना चाहिये। उड़दकी दाल, मटर, मोठ आदिका दूधके साथ प्रयोग नहीं करना चाहिये। शहद और घीको समान मात्रामें मिलाकर नहीं लेना चाहिये। मधु और घृतकी विषम मात्राको भी वर्षा जलके साथ कभी नहीं लेना चाहिये। भोजन उचित समयपर प्रकृतिके अनुकूल, स्वास्थ्यवर्धक, स्निग्ध, गरम, सुपाच्य, मन लगाकर छः रसोंसे युक्त जिसमें मधुर राशिवाले पदार्थ अधिक हों, इस प्रकारके भोजनको न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे खाना चाहिये।

**इनका सेवन नित्य किया जा सकता है**—साठी चावल, मूँगकी दाल, शालि चावल, सेंधा नमक, गेहूँ, चौलाई, कच्ची मूली, बथुआ, हरीतकी, आँवला, मुनक्का, परवल, दूध, मधु और अनार—इनका सेवन रोज किया जा सकता है। जबकि दही, कूर्चिका, उड़दकी दाल, निष्पावद्वारा निर्मित भोजन, अंकुरित अन्न तथा शुष्क शाकका सेवन अधिक मात्रामें नहीं करना चाहिये।

आहार प्राणियोंके बल, वर्ण और ओजका मूल आधार है। आहार छः रसोंपर निर्भर करता है। दोषोंका क्षय, वृद्धि और समता आहारके कारण ही होते हैं। आहारकी विषमताके कारण ही रोग उत्पन्न होते हैं। अतः इसका प्रयोग समुचित ढंगसे ही करना चाहिये। आहार वही श्रेष्ठ है, जिसे जठराग्नि पचा सके और तृप्ति प्राप्त हो।

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामीजी कहते हैं—

**भोजन करिअ तृपिति हित लगी । जिमि सो असन पचवै जठरागी॥**

(७।११९।९)

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे खाद्य-द्रव्योंको तीन भागोंमें विभक्त किया है। सरस, स्निग्ध, सारवान् और हृदयग्राही आहार सात्त्विक होता है। अधिक कटु, अम्ल, लवण, उष्ण, तीक्ष्ण, रुक्ष और जलन उत्पन्न करनेवाला चरपरा आहार राजसिक है और बासी, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, जूठा एवं अपवित्र आहार तामसिक है। सात्त्विक आहारसे आयु, बल, उत्साह, आरोग्य, सुख और प्रीतिकी वृद्धि होती है और चित्तमें सत्त्वगुणकी वृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। राजसिक आहारसे दुःख, शोक और रोग उत्पन्न होते हैं और तामसिक आहारसे जड़ता, अज्ञान, कुरोग और पाशविकता बढ़ती है, अतः राजसिक और तामसिक खाद्य-द्रव्योंका परित्यागकर सात्त्विक आहार ही ग्रहण करना चाहिये—

**आयुःसत्त्वबलारोग्य-**
**सुखप्रीतिविवर्धनाः ।**
**रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या-**
**आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥**
**कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।**
**आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥**
**यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।**
**उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥**

(गीता १७।८—१०)

भोजन-ग्रहण भी एक प्रकारका यज्ञ है, यह नित्य यज्ञ है और इससे भगवान् यज्ञेश्वर तृप्त होते हैं। इस प्रकार भोजनसे केवल उदरपूर्ति ही नहीं, भगवान् यज्ञेश्वरकी पूजा भी हो जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण (गीता १५।१४)-में कहते हैं—

**अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।**
**प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥**

*सन्त-चरित—*

# भक्त जोग परमानन्द

दक्षिण भारतके वारसी नामक ग्राममें जोग परमानन्दजीका जन्म हुआ था। जब ये छोटे बालक थे, इनके गाँवमें भगवान्‌की कथा तथा कीर्तन हुआ करता था। इनकी कथा सुननेमें रुचि थी। कीर्तन इन्हें अत्यन्त प्रिय था। कभी रातको देरतक कथा या कीर्तन होता रहता तो ये भूख-प्यास भूलकर मन्त्रमुग्ध होकर सुना करते। एक दिन कथा सुनते समय जोग परमानन्दजी अपने आपको भूल गये। व्यासगद्दीपर बैठे वक्ता भगवान्‌के त्रिभुवन-कमनीय स्वरूपका वर्णन कर रहे थे। जोग परमानन्दका चित्त श्यामसुन्दरकी उसी रूपमाधुरीके सागरमें डूब गया। नेत्र खोला तो देखते हैं कि वही वनमाली, पीताम्बरधारी प्रभु सामने खड़े हैं। परमानन्दकी अश्रुधाराने प्रभुके लाल-लाल श्रीचरणोंको पखार दिया और कमललोचन श्रीहरिके नेत्रोंसे कृपाके अमृतबिन्दुओंने गिरकर परमानन्दके मस्तकको धन्य बना दिया।

लोग कहने लगे कि जोग परमानन्द पागल हो गये। संसारकी दृष्टिमें जो विषयकी आसक्ति छोड़कर, इस विषके प्यालेको पटककर ब्रजेन्द्र-सुन्दरमें अनुरक्त होता है, जो उस अमृतके प्यालेको होठोंसे लगाता है, उसे यहाँकी मृगमरीचिकामें दौड़ते, तड़पते, जलते प्राणी पागल ही कहते हैं। पर जो उस दिव्य सुधारसका स्वाद पा चुका, वह इस गड्ढे-जैसे संसारके सड़े कीचड़की ओर कैसे देख सकता है। परमानन्दको तो अब परमानन्द मिल गया। जगत्‌के भोग और मान-बड़ाईसे उन्हें क्या लेना-देना। अब तो वे बराबर 'राम-कृष्ण-हरि' जपते हैं और कभी नाचते हैं, कभी रोते हैं; कभी हँसते हैं; कभी भूमिपर लोटते हैं, 'विट्ठल, विट्ठल' कहते हुए। उनका चित्त अब और कुछ सोचता ही नहीं।

जोग परमानन्दजी अब पण्ढरपुर आ गये थे। वे पण्ढरीनाथका षोडशोपचारसे नित्य पूजन करते और उसके पश्चात् मन्दिरके बाहर भगवान्‌के सामने गीताका एक श्लोक पढ़कर साष्टांग दण्डवत् करते। इस प्रकार सात सौ श्लोक पढ़कर सात सौ दण्डवत् नित्य करनेका उन्होंने नियम बना लिया था। सम्पूर्ण गीताका पाठ करके सात सौ दण्डवत् पूरी हो जानेपर ही वे भिक्षा करने जाते और भिक्षामें प्राप्त अन्नसे भगवान्‌को नैवेद्य अर्पण करके प्रसाद पाते।

गर्मी हो या सर्दी, पानी पड़े या पत्थर; जोग परमानन्दजीको तो सात सौ दण्डवत् नित्य करनी ही हैं। नेत्रोंके सम्मुख पाण्डुरंगका श्रीविग्रह, मुखमें गीताके श्लोक और हृदयमें भगवान्‌का ध्यान, सारा शरीर दण्डवत् करनेमें लगा है। ज्येष्ठमें पृथ्वी तवे-सी जलती हो, तो भी परमानन्दजीकी दण्डवत् चलेगी और पौष-माघमें बरफ-सी शीतल हो जाय तो भी दण्डवत् चलेगी। वर्षा हो रही है, भूमि कीचड़से ढँक गयी है; पर परमानन्दजी भीगते हुए, कीचड़से लथपथ दण्डवत् करते जा रहे हैं।

एक बार एक साहूकार बाजार करने पण्ढरपुर आया। जोग परमानन्दकी तितिक्षा देखकर उसके मनमें श्रद्धा हुई। रेशमी कपड़ेका एक थान लेकर वह उनके पास पहुँचा और स्वीकार करनेकी प्रार्थना करने लगा। परमानन्दजीने कहा—'भैया! मैं इस वस्त्रको लेकर क्या करूँगा। मेरे लिये तो फटे-चिथड़े ही पर्याप्त हैं। इस सुन्दर वस्त्रको तुम श्रीपाण्डुरंगको भेंट करो।' परंतु व्यापारी समझानेसे मान नहीं रहा था। वह आग्रह करता ही जाता था। वस्त्र न लेनेसे उसके हृदयको दुःख होगा, यह देखकर परमानन्दजीने वह रेशमी वस्त्र स्वीकार कर लिया।

जोग परमानन्दजीने रेशमी वस्त्र स्वीकार तो किया था व्यापारीको कष्ट न हो इसलिये। पर जब वस्त्र ले लिया, तब इच्छा जगी कि उसे पहनना भी चाहिये। दूसरे दिन वे रेशमी वस्त्र पहनकर भगवान्‌की पूजा करने आये। आज भी वर्षा हो रही थी। पृथ्वी कीचड़से भरी थी। परमानन्दका मन वस्त्रपर लुभा गया। पूजा करके दण्डवत् करते समय उन्होंने वस्त्र समेट लिये। आज उनकी दृष्टि पाण्डुरंग प्रभुपर नहीं थी—वे बार-बार वस्त्र देखते थे, वस्त्र सँभालते थे। दण्डवत् ठीक नहीं होती थी; क्योंकि मूल्यवान् नवीन रेशमी वस्त्रके कीचड़से खराब हो जानेका भय था। भक्ति-मार्गमें दयामय भगवान् अपने भक्तकी सदा उसी

प्रकार रक्षा करते रहते हैं, जैसे स्नेहमयी माता अपने अबोध शिशुकी करती है। बालक खिलौना समझकर जब सर्प या अग्निके अंगारे लेने दौड़ता है, तब जननी उसे उठाकर गोदमें ले लेती है। जहाँ मायाके प्रलोभन दूसरे साधकोंको भुलावेमें डालकर पथभ्रष्ट कर देते हैं, वहाँ भक्तका उनसे कुछ भी नहीं बिगड़ता। जो अपनेको श्रीहरिके चरणोंमें छोड़ चुका, वह जब कहीं भूल करता है, तब झट उसे वे कृपासिन्धु सुधार देते हैं। वह जब कहीं मोहमें पड़ता है, तब वे हाथ पकड़कर उसे वहाँसे निकाल लाते हैं। आज जोग परमानन्द रेशमी वस्त्रोंके मोहमें पड़ गये थे। अचानक हृदयमें किसीने पूछा—'परमानन्द! तू वस्त्रोंको देखने लगा! मुझे नहीं देखता आज तू?' परमानन्दने दृष्टि उठायी तो जैसे सम्मुख श्रीपाण्डुरंग कुछ मुसकराते, उलाहना देते खड़े हों। झट उस रेशमी वस्त्रको टुकड़े-टुकड़े फाड़कर उन्होंने फेंक दिया।

'मुझसे बड़ा पाप हुआ। मैं बड़ा अधम हूँ।' जोग परमानन्दको बड़ा ही दु:ख हुआ। वे अपने इस अपराधका प्रायश्चित्त करनेका विचार करके नगरसे बाहर चले गये। दो बैलोंको जुएमें बाँधा और अपनेको रस्सीके सहारे जुएसे बाँध दिया। चिल्लाकर बैलोंको भगा दिया। शरीर पृथ्वीमें घसीटता जाता था, कंकड़ोंसे छिल रहा था, काँटे चुभते और टूटते जाते थे, रक्तकी धारा चल रही थी; किंतु परमानन्द उच्चस्वरसे प्रसन्न मनसे 'राम! कृष्ण! गोविन्द!' की टेर लगा रहे थे। जैसे-जैसे शरीर छिलता, घसीटता, वैसे-वैसे उनकी प्रसन्नता बढ़ती जाती थी। वैसे-वैसे उनका स्वर ऊँचा होता जाता था और वैसे-वैसे बैल भड़ककर जोरसे भागते जाते थे।

भक्तवत्सल प्रभुसे अपने प्यारे भक्तका यह कष्ट देखा नहीं गया। वे एक ग्वालेके रूपमें प्रकट हो गये। बैलोंको रोककर जोग परमानन्दको उन्होंने रस्सीसे खोल दिया और बोले—'तुमने अपने शरीरको इतना कष्ट क्यों दिया? भला, तुम्हारा ऐसा कौन-सा अपराध था? तुम्हारा शरीर तो मेरा हो चुका है। तुम जो कुछ खाते हो, वह मेरे ही मुखमें जाता है। तुम चलते हो तो मेरी उससे प्रदक्षिणा होती है। तुम जो भी बातें करते हो, वह मेरी स्तुति है। जब तुम सुखसे लेट जाते हो, तब वह मेरे चरणोंमें तुम्हारा साष्टांग प्रणाम हो जाता है। तुमने यह कष्ट उठाकर मुझे रुला दिया है।' प्रभुने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। जोग परमानन्द श्यामसुन्दरसे मिलकर उनमें एकाकार हो गये।

## 'अब तो आँखें खोल'

( आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश' )

**रे मन! अब तो आँखें खोल।**
**भवसागरमें बहा जा रहा जीवन-धन अनमोल॥**
**परम लक्ष्यसे भटक गया क्यों गया धर्मको भूल,**
**भोग-वासना, धन-सम्पत्तिमें रहा रात-दिन फूल,**
**माया-नटिनीके वशमें पड़ हो गया लम्पट-लोल।**
**रे मन! अब तो आँखें खोल॥**

**तन-बल, धन-बल, यौवन-बल पर क्यों करता अभिमान,**
**तान रहा क्यों आसमान-तक अघके घोर बितान,**
**मोहमूढ़ तू पीट रहा क्यों ज्ञान-मानके ढोल?**
**रे मन! अब तो आँखें खोल॥**

**जा न सकेगा अन्त-समयमें कुछ भी तेरे साथ,**
**जायेगा तू स्वयं छोड़ सब जगसे खाली हाथ**
**सभी जनोंके साथ सदा तू सहज प्रेम-रस घोल।**
**रे मन! अब तो आँखें खोल॥**

**सावधान यदि नहीं हुआ तू, रे मन! अबकी बार,**
**तो कैसे कर पायेगा तू जीवनका उद्धार,**
**परमेश्वरकी प्रेम-तुलापर तू अपनेको तोल।**
**रे मन! अब तो आँखें खोल॥**

**तनसे कर उपकार लोकका, मनसे जप हरिनाम,**
**सदा सत्यकी सत्संगतिमें रह तू आठों याम,**
**बोल सदा 'मधुरेश' सभीसे प्रेम भरे रस-बोल।**
**रे मन! अब तो आँखें खोल॥**

गो-चिन्तन—

# गो-महिमा

( श्रीमद्जगद्गुरु द्वाराचार्य श्रीमलूकपीठाधीश्वर स्वामी श्रीराजेन्द्रदास देवाचार्यजी महाराज )

एक कथा गोमाताकी महिमासे सम्बद्ध है। इस धरतीका नाम मेदिनी हुआ; क्योंकि मधु और कैटभके मेदसे ये परिपूरित हो उठी। इस घटनाके बाद धरतीपर किये गये जो यज्ञादिक धर्मकृत्य हैं, उनका फल लोगोंको प्राप्त नहीं होता था। हाहाकार मच गया। देवताओंको उनका भाग प्राप्त नहीं होता था। सब दुखी होकर ब्रह्माजीके पास गये। और कहा—भगवन्! धरतीपर यज्ञ हो रहे हैं, लेकिन उन यज्ञोंका फल न तो प्रजाको मिल रहा है, न हम स्वर्गके देवताओंको मिल रहा है। लोग नास्तिक होते चले जा रहे हैं। वैदिक कर्मकाण्ड अनुष्ठान किये जा रहे हैं, लेकिन फलकी प्राप्ति नहीं हो रही है। उसका क्या कारण है? ब्रह्माजी प्रजाकी दशा देखकर व्याकुल हो गये। ब्रह्माजी बोले, चिन्ता मत करो। तदनन्तर ब्रह्माजीने थोड़ा अमृतका पान किया, जिससे उन्हें तृप्तिका अनुभव हुआ और तृप्तिका अनुभव होनेसे उन्हें डकार आयी। जैसे ही डकार आयी तो सुगन्ध उनके मुखसे निकली। सुगन्धको संस्कृत भाषामें सुरभि कहते हैं। अमृतपानकी डकार सुरभि आयी। उससे गोमाता सुरभि प्रकट हो गयीं। ब्रह्माजीने कहा आजसे गायके गोबरसे जहाँ लीप दिया जायगा। गोमूत्र और गोबरका प्रयोग जहाँ कर दिया जायगा, वहाँ किये गये सारे वैदिक कृत्य सफल होंगे। इसलिये प्रत्येक यज्ञमें गायके गोबरसे लीपना चाहिये। इसीलिये यज्ञकुण्डका संस्कार गायके गोबर-गोमूत्रसे होता है।

हमारे मलूकदासजीका जो धूना है, वह अतिप्राचीन है। उसमें पुराना पत्थर जड़ा हुआ है और पत्थरके ऊपर गोबर लिपवा दिया गया है। अब दो दिन-तीन दिनमें गायके गोबरसे वहाँ चौका लगता रहता है। बढ़िया-से-बढ़िया पक्का फर्श हो, उसकी उतनी महिमा नहीं है; क्योंकि असुर मेदका अंश उसमें समाया हुआ है, इसलिये उसको मेदिनी कहते हैं और उस मेदको शुद्ध करनेकी सामर्थ्य गोबर और गोमूत्रमें है। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हम चाहे सत्यनारायण-कथा ही करवायें, कोई यज्ञ करवायें, कोई भी वैदिक शुभ कर्म करवायें, विवाह आदि हो गायके गोबरसे लीपनेके बाद चौका लगानेके बाद ही हम शास्त्रीय कृत्य करेंगे। तभी उसका पूरा फल प्राप्त होगा। पर दुर्भाग्यकी बात है; दूध, दही, घी आदिकी बात जाने दीजिये, आज इतना गोवंश भी नहीं बचा है कि सबलोग गोबरसे अपने घरको लीप सकें। यह भारतवर्षके लिये अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। इसलिये हम बार-बार निवेदन करते हैं कि यदि ठीकसे अपने घरमें शास्त्रीय पद्धतिसे भगवान्‌की सेवा करना चाहते हो, देवताओंका-पितरोंका समयसे अर्चन-पूजन करना चाहते हो, तो आप सब स्वयं गोपालक बनिये। अपने घरमें गाय पालिये तभी आप ठीकसे गोव्रती भी हो पायेंगे, तभी आपको गोमाताकी महिमाका अनुभव भी होगा और जो लोग ऐसे बड़े शहरोंमें रहते हैं, फ्लैटोंमें रहते हैं, जहाँ वे गाय नहीं पाल सकते, ऐसे लोग भी इच्छा अपने मनमें करें और समान विचारधारावाले लोगोंके साथ मिल करके कहीं शहरके बाहर दूर अच्छे स्वच्छ वातावरणमें भूखण्ड खरीद करके और सुन्दर भारतीय देशी नस्लकी गायें लेकर रखें। आपके व्यापार-प्रतिष्ठान दूर-दूर होते हैं, तीस-तीस, चालीस-चालीस किमी० दूर होते हैं तो क्या गोशाला नहीं हो सकती है? आप वहाँ जायँ; नित्य आपको दूध, दही, घी, गोमय, गोमूत्र प्राप्त होता रहेगा। आप चाहें तो सब कुछ हो सकता है, लेकिन आप चाहें नहीं तो हर बातमें बहाने हैं।

एक समयकी बात है, सम्पूर्ण गायोंकी उत्पत्ति जिन सुरभि गायसे हुई है, गौमाता सुरभि बहुत व्याकुल हो करके फूट-फूटकर रोने लग गयीं। सुरभिको रुदन करते देख इन्द्रको बड़ी दया आयी और इन्द्रने सुरभिमाताको प्रणाम करके कहा—हे माता! आप क्यों रो रही हैं? आपके रोनेका क्या कारण है? देवलोकवासियोंकी तो कुशल है, धरतीके मनुष्योंकी भी कुशल है, गोवंशकी भी कुशल है।

उस समय गोवध-जैसा भयंकर पाप नहीं हो रहा था। इसलिये इन्द्रने कहा, गोवंश भी सुखी है, आपके रोनेका कारण क्या है? तब सुरभिमाताने कहा—देवराज! देखो, वह किसान मेरे पुत्र जो बैल हैं, उनके ऊपर भारी बोझा लादकर ले जा रहा है, इसमेंसे एक बैल तो मजबूत है, दूसरा बड़ा कमजोर है, हड्डियाँ दिखायी पड़ रही हैं, वह बैल ठीकसे चल नहीं पा रहा है, तो उसको चाबुकसे मार रहा है। अपने पुत्रकी पीड़ाको देख करके मैं अत्यन्त दुखी हो रही हूँ।

बेचारा भारी बोझसे पीड़ित हो रहा है, चाबुककी मार खा रहा है। इसलिये मैं अत्यन्त दुखी हो रही हूँ।

आदि गौ सुरभिमाता अपने एक पुत्र वृषभको पीड़ा पाते देख इतना रो रही है, तो अब विचार करनेकी बात है, हजारोंकी संख्यामें नर गोवंश मौतके घाट उतारा जा रहा है, उनका वध किया जा रहा है और नर गोवंश ही नहीं, गोवंशकी हत्या की जा रही है। गोवध किया जा रहा है, इसे देख करके सुरभिमाता कितना रो रही होंगी और उस सुरभिका रुदन ही आज सारे विश्वको अशान्त बनाये हुए है। ये गोवंशका दुखी होना भयंकर विपत्तियोंका कारण है। आज सम्पूर्ण विश्व बारूदके ढेरपर बैठा है, ये गोवंशकी हत्याका ही दुष्परिणाम है।

# जाम्भोजीकी गोसेवा

( श्रीमाँगीलालजी बिश्नोई 'अज्ञात', एम०ए०, बी०एड० )

जोधपुर राज्यके अन्तर्गत नागौरसे ५१ किलोमीटर उत्तरमें स्थित पीपासर नामक एक ग्राममें श्रीविक्रमादित्य नरेशकी इकतालीसवीं पीढ़ीमें श्रीलोहटजी नामक एक परम धार्मिक तथा गोसेवी सन्त रहते थे। उन्होंने आजीवन गोचारण तथा गोसेवा की। जब वे द्रौणपुरके छापर नीम्बीके रेतीले धोरोंमें गोचारणहेतु गये हुए थे और पचास वर्षकी उम्रमें भी पुत्र-प्राप्ति-लाभ न होनेसे चिन्तित तथा क्षुब्ध-अवस्थामें विचारमग्न थे तो गोसेवाके ही चमत्कारसे ध्यानावस्थामें उन्हें लगा—'जैसे कोई उन्हें जल पिला रहा है।' आँखें खोलीं तो देखा—एक अवधूत-वेषधारी महात्मा सामने खड़े हैं और कह रहे हैं—'सामने खड़ी बछियाका दूध दुहकर लाओ।' आश्चर्य! दो बरसकी छोटी बछियाका दूध दुहनेको कहा जा रहा था, परंतु लोहटजी ज्यों ही आज्ञापालनके लिये दूध दुहने बैठे, त्यों ही परम आश्चर्यमें निमग्न हो गये। लोहटजीका दोहन-पात्र बछियाके स्तनोंकी स्वत: नि:सृत दुग्धधारासे पलक झपकते भर गया। महात्माने उस दुग्ध-पात्रको हाथसे स्पर्श करके लोहटजीको दूध पीनेकी आज्ञा देते हुए कहा—'लोहट! तुम्हारे अमित तेजस्वी एवं प्रतापी पुत्र होगा।'

अगले ही क्षण महात्मा तो अदृश्य हो गये, परंतु श्रीमान् लोहटजी पँवारके घर वि०सं० १५०८ की भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको एक अद्भुत बालकने जन्म लिया।

इन्हीं अवतारी महात्मा योगेश्वर भगवान् जाम्भोजीने सात वर्ष बाल-क्रीडामें बिताये, सत्ताईस वर्षतक गायें चरायीं और वि०सं० १५४२ में सम्भराथल धोरेपर गोरक्षा-हेतु वैदिक मतावलम्बी 'बिश्नोईधर्म' की स्थापना की।

गोसेवा-निमित्त जंगलमें रहते हुए ये 'ओम् विष्णु' का अखण्ड जप करते-करते विष्णुमय ही हो गये। यह सब गोसेवाका ही प्रताप था। उनका काल इतिहासकी दृष्टिसे इब्राहीम तथा सिकन्दर लोदीका काल था। जाम्भोजीने तत्कालीन पंजाबके मालेर कोटला नगरके शेख सद्दू और दिल्लीके सिकन्दर लोदीसे भी गोहत्या छुड़वायी थी और उन्हें जीव-दयाका उपदेश दिया था।

जाम्भोजीने ५१ वर्षतक तीर्थाटन करते हुए उपदेश दिये, जो 'शब्दवाणी' के रूपमें संगृहीत हैं। अपने शब्दोपदेशोंमें उन्होंने जगह-जगह गोसेवा तथा जीवदयाका उल्लेख किया है। वैदिक मतावलम्बी 'बिश्नोई सम्प्रदाय' की स्थापना करते हुए उन्होंने अपने पन्थानुयायियोंको उपदिष्ट करते हुए सर्वप्रथम यही कहा कि—

'गायोंकी सेवा करना। उन्हें कभी भी फाटक (घेरे) आदिमें डालकर दण्डाना मत (मारना मत, कष्ट न देना)। गोवत्सको कभी बधिया न कराना।'

# सुभाषित-त्रिवेणी

## उत्तम मित्रके लक्षण

## [Attributes of a good friend]

**न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति**
**यद् वा मित्रं शंकितनोपचर्यम्।**
**यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत**
**तद् वै मित्रं संगतानीतराणि॥**

जिसके कोपसे भयभीत होना पड़े तथा शंकित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिसपर पिताकी भाँति विश्वास किया जा सके; दूसरे तो संगीमात्र हैं।

He is not a friend who always inspires fear with his angry behaviour or who has been placated for fear of harm. He alone is a true friend who can be trusted like a father. Others are at best companions.

**यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।**
**स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम्॥**

पहलेसे कोई सम्बन्ध न होनेपर भी जो मित्रताका बर्ताव करे, वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है।

Even a hitherto stranger, if he behaves like a friend, becomes a relation, a friend, support and shelter.

**चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः।**
**पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः॥**

जिसका चित्त चंचल है, जो वृद्धोंकी सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुषके लिये मित्रोंका संग्रह स्थायी नहीं होता।

A fickle person, or one who does not look after the elderly, or one whose thinking is never stable, can never make permanent friends.

**चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।**
**अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा॥**

जैसे हंस सूखे सरोवरके आस-पास ही मँड़राकर रह जाते हैं, भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चंचल है; जो अज्ञानी और इन्द्रियोंका गुलाम है, उसे अर्थकी प्राप्ति नहीं होती।

An ignorant man, a man who changes his mind all the time, or a man who is ensnared by his lustful senses, cannot attain *Artha* [objective, desire, riches]. He is like a Hamsa which hovers around a lake that has dried but never steps into it.

**अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।**
**शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा॥**

दुष्ट पुरुषोंका स्वभाव मेघके समान चंचल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं।

An evil man's temperament is fickle like that of a cloud. He gets angry for no reason and is pleased without justification.

**सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये।**
**तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुंजते॥**

जो मित्रोंसे सत्कार पाकर और उनकी सहायतासे कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नोंके मरनेपर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते।

Even carnivores do not feed upon the flesh of ungrateful men who betray their friends who have helped them and who have treated them with kindness.

**अर्चयेदेव मित्राणि सति वासति वा धने।**
**नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम्॥**

धन हो या न हो, मित्रोंका तो सत्कार करे ही। मित्रोंसे कुछ भी न माँगते हुए उनके सार-असारकी परीक्षा न करे।

Honour a friend whether he is rich or pauper. Making no demand on friends, one ought not to look forward to material benefits from them. **[ विदुरनीति अ० ४। ३७—४३ ]**

# व्रतोत्सव-पर्व

## सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२४, सूर्य-उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें ११।५३ बजेतक | शुक्र | पुष्य दिनमें ९।४० बजेतक | २६ जनवरी | **गणतन्त्रदिवस, मूल** दिनमें ९।४० बजेसे। |
| द्वितीया ,, १।४८ बजेतक | शनि | आश्लेषा ,, ११।५४ बजेतक | २७ ,, | **सिंहराशि** दिनमें ११।५४ बजेसे। |
| तृतीया ,, ३।५५ बजेतक | रवि | मघा ,, २।२२ बजेतक | २८ ,, | **भद्रा** दिनमें २।५१ बजेसे रात्रिमें ३।५५ बजेतक, **मूल** दिनमें २।२२ बजेतक। |
| चतुर्थी रात्रिशेष ६।५ बजेतक | सोम | पू०फा० सायं ५।० बजेतक | २९ ,, | **कन्याराशि** रात्रिमें ११।३९ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।४८ बजे। |
| पंचमी अहोरात्र | मंगल | उ०फा० रात्रिमें ७।३३ बजेतक | ३० ,, | × × × × |
| पंचमी प्रात: ८।५ बजेतक | बुध | हस्त ,, ९।५५ बजेतक | ३१ ,, | **रवियोग** रात्रिमें ९।५५ बजेसे। |
| षष्ठी दिनमें ९।५१ बजेतक | गुरु | चित्रा ,, ११।५८ बजेतक | १ फरवरी | **रवियोग** रात्रिमें ११।५८ बजेतक, **भद्रा** दिनमें ९।५१ बजेसे रात्रिमें १०।३२ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें १०।५६ बजेसे। |
| सप्तमी ,, ११।११ बजेतक | शुक्र | स्वाती ,, १।३३ बजेतक | २ ,, | × × × × |
| अष्टमी ,, १२।६ बजेतक | शनि | विशाखा ,, २।४१ बजेतक | ३ ,, | **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ८।२४ बजेसे। |
| नवमी ,, १२।२७ बजेतक | रवि | अनुराधा ,, ३।१८ बजेतक | ४ ,, | **भद्रा** रात्रिमें १२।२२ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ३।१८ बजेसे। |
| दशमी ,, १२।१५ बजेतक | सोम | ज्येष्ठा ,, ३।२५ बजेतक | ५ ,, | **भद्रा** दिनमें १२।१५ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ३।२५ बजेसे। |
| एकादशी ,, ११।३७ बजेतक | मंगल | मूल ,, ३।६ बजेतक | ६ ,, | **षट्तिला एकादशीव्रत ( सबका ), धनिष्ठामें सूर्य** रात्रिशेष ६।२२ बजे, **मूल** रात्रिमें ३।६ बजेतक। |
| द्वादशी ,, १०।३० बजेतक | बुध | पू०षा० ,, २।२१ बजेतक | ७ ,, | **प्रदोषव्रत।** |
| त्रयोदशी ,, ९।१ बजेतक | गुरु | उ०षा० ,, १।१८ बजेतक | ८ ,, | **भद्रा** दिनमें ९।१ बजेसे रात्रिमें ८।६ बजेतक, **मकरराशि** प्रात: ८।५ बजेसे। |
| चतुर्दशी प्रात: ७।११ बजेतक | शुक्र | श्रवण ,, ११।५७ बजेतक | ९ ,, | **मौनी अमावस्या।** |

## सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२४, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ -शुक्लपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें २।५१ बजेतक | शनि | धनिष्ठा रात्रिमें १०।२४ बजेतक | १० फरवरी | **कुम्भराशि** दिनमें १०।१० बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १०।१० बजे। |
| द्वितीया ,, १२।३० बजेतक | रवि | शतभिषा ,, ८।४७ बजेतक | ११ ,, | × × × × |
| तृतीया ,, १०।७ बजेतक | सोम | पू०भा० ,, ७।५ बजेतक | १२ ,, | **मीनराशि** दिनमें १।३१ बजेसे। |
| चतुर्थी ,, ७।४८ बजेतक | मंगल | उ०भा० सायं ५।२८ बजेतक | १३ ,, | **कुम्भसंक्रान्ति** रात्रिमें ७।५८ बजे, **भद्रा** दिनमें ८।५७ बजेसे रात्रिमें ७।४८ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** सायं ५।२८ बजेसे। |
| पंचमी सायं ५।४० बजेतक | बुध | रेवती ,, ४।० बजेतक | १४ ,, | **मेषराशि** सायं ४।० बजेसे, **वसन्तपंचमी, पंचक समाप्त** सायं ४।० बजे। |
| षष्ठी दिनमें ३।४३ बजेतक | गुरु | अश्विनी दिनमें २।४३ बजेतक | १५ ,, | **मूल** दिनमें २।४३ बजेतक। |
| सप्तमी ,, २।५ बजेतक | शुक्र | भरणी ,, १।४६ बजेतक | १६ ,, | **भद्रा** दिनमें २।५ बजेसे रात्रिमें १।२७ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ७।३७ बजेसे, **अचलासप्तमी, रथसप्तमी।** |
| अष्टमी ,, १२।४८ बजेतक | शनि | कृत्तिका ,, १।८ बजेतक | १७ ,, | **भीष्माष्टमी।** |
| नवमी ,, ११।५६ बजेतक | रवि | रोहिणी ,, १२।५५ बजेतक | १८ ,, | **मिथुनराशि** रात्रिमें १।४ बजेसे। |
| दशमी ,, ११।३३ बजेतक | सोम | मृगशिरा ,, १।११ बजेतक | १९ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ११।३७ बजेसे, **सायन मीन का सूर्य** दिनमें २।१२ बजे। |
| एकादशी ,, ११।४० बजेतक | मंगल | आर्द्रा ,, १।५६ बजेतक | २० ,, | **भद्रा** दिनमें ११।४० बजेतक, **जया एकादशीव्रत ( सबका ), शतभिषाका सूर्य** दिनमें ९।५९ बजे। |
| द्वादशी ,, १२।२० बजेतक | बुध | पुनर्वसु ,, ३।१३ बजेतक | २१ ,, | **कर्कराशि** दिनमें ८।५३ बजेसे, **प्रदोषव्रत।** |
| त्रयोदशी ,, १।२६ बजेतक | गुरु | पुष्य सायं ४।५६ बजेतक | २२ ,, | **मूल** सायं ४।५६ बजेसे। |
| चतुर्दशी ,, ३।२ बजेतक | शुक्र | आश्लेषा रात्रिमें ७।५ बजेतक | २३ ,, | **भद्रा** दिनमें ३।२ बजेसे रात्रिमें ३।५९ बजेतक, **सिंहराशि** रात्रिमें ७।५ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।** |
| पूर्णिमा सायं ४।५७ बजेतक | शनि | मघा ,, ९।३१ बजेतक | २४ ,, | **माघी पूर्णिमा, मूल** रात्रिमें १।३१ बजेतक, **माघस्नान समाप्त।** |

# व्रतोत्सव-पर्व

## सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२४, सूर्य-उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें ७। ३ बजेतक | रवि | पू०फा० रात्रिमें १२।७ बजेतक | २५ फरवरी | × × × × |
| द्वितीया ,, ९।११ बजेतक | सोम | उ०फा० ,, २।४३ बजेतक | २६ ,, | **कन्याराशि** प्रातः ६। ४५ बजेसे। |
| तृतीया ,, ११।११ बजेतक | मंगल | हस्त ,, ५।९ बजेतक | २७ ,, | **भद्रा** दिनमें १०। ११ बजेसे रात्रिमें ११। ११ बजेतक। |
| चतुर्थी ,, १२।५३ बजेतक | बुध | चित्रा अहोरात्र | २८ ,, | **तुलाराशि** रात्रिमें ६। १२ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। १४ बजे। |
| पंचमी ,, २। ९ बजेतक | गुरु | चित्रा प्रातः ७। १५ बजेतक | २९ ,, | × × × × |
| षष्ठी ,, ३। ० बजेतक | शुक्र | स्वाती दिनमें ८। ५६ बजेतक | १ मार्च | **भद्रा** रात्रिमें ३। ० बजेसे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ३। ५३ बजेसे। |
| सप्तमी ,, ३। १८ बजेतक | शनि | विशाखा दिनमें१०। १२ बजेतक | २ ,, | **भद्रा** दिनमें ३। ९ बजेतक। |
| अष्टमी ,, ३। ५ बजेतक | रवि | अनुराधा ,, १०।५६ बजेतक | ३ ,, | **श्रीजानकी-जयन्ती, मूल** दिनमें १०। ५६ बजेसे। |
| नवमी ,, २। २० बजेतक | सोम | ज्येष्ठा ,, ११। १० बजेतक | ४ ,, | **धनुराशि** दिन ११। १० बजेसे, **पू०भा०** का सूर्य दिनमें ३। ३२ बजे। |
| दशमी ,, १। ११ बजेतक | मंगल | मूल ,, १०।५५ बजेतक | ५ ,, | **भद्रा** दिनमें १। ४५ बजेसे रात्रिमें १। ११ बजेतक, **मूल** रात्रिमें १०। ५५ बजेतक। |
| एकादशी ,, ११।३९ बजेतक | बुध | पू०षा० ,, १०। १६ बजेतक | ६ ,, | **मकरराशि** दिनमें ४। १ बजेसे, **विजया एकादशीव्रत ( सबका )।** |
| द्वादशी ,, ९। ४६ बजेतक | गुरु | उ०षा० ,, ९। १७ बजेतक | ७ ,, | × × × × |
| त्रयोदशी ,, ७। ३८ बजेतक | शुक्र | श्रवण प्रातः ७।५९ बजेतक | ८ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ७। ३८ बजेसे, **कुंभराशि** रात्रिमें ७। १५ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ७। १५ बजे, **प्रदोषव्रत, महाशिवरात्रिव्रत।** |
| चतुर्दशी सायं ५। २० बजेतक | शनि | धनिष्ठा ,, ६। ३० बजेतक | ९ ,, | **भद्रा** प्रातः ६। २८ बजेतक। |
| अमावस्या दिनमें २।५८ बजेतक | रवि | पू०फा० रात्रिमें ३। १२ बजेतक | १० ,, | **मीनराशि** रात्रिमें ९। ३८ बजेसे, **अमावस्या।** |

## सं० २०८०, शक १९४५-४६, सन् २०२४, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, फाल्गुन -शुक्लपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा दिनमें १२। ३४ बजेतक | सोम | उ०भा० रात्रिमें १। ३४ बजेतक | ११ मार्च | **मूल** रात्रिमें १। ३४ बजेसे। |
| द्वितीया ,, १०। १४ बजेतक | मंगल | रेवती ,, १२। २ बजेतक | १२ ,, | **मेषराशि** रात्रिमें १२। २ बजेतक, **पंचक समाप्त** रात्रिमें १२। २ बजेतक। |
| तृतीया ,, ८। ४ बजेतक | बुध | अश्विनी ,, १०। ४४ बजेतक | १३ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ७। ६ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** रात्रिमें १०। ४४ बजेतक। |
| चतुर्थी प्रातः ६। ७ बजेतक | गुरु | भरणी ,, ९। ४० बजेतक | १४ ,, | **भद्रा** प्रातः ६। ७ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ३। ३१ बजेसे, **मीन संक्रान्ति** दिनमें ३। १२ बजे, **वसन्तऋतु प्रारम्भ, खरमास प्रारम्भ।** |
| षष्ठी रात्रिमें ३। १२ बजेतक | शुक्र | कृत्तिका ,, ८। ५८ बजेतक | १५ ,, | × × × × |
| सप्तमी ,, २। २० बजेतक | शनि | रोहिणी ,, ८। ४० बजेतक | १६ ,, | **भद्रा** रात्रिमें २। २० बजेसे। |
| अष्टमी ,, १। ५८ बजेतक | रवि | मृगशिरा ,, ८। ४९ बजेतक | १७ ,, | **भद्रा** दिनमें २। २८ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ८। ४४ बजेसे, **उ०भा०का सूर्य** रात्रिमें ११। २३ बजे, **होलाष्टकारम्भ।** |
| नवमी ,, २। ६ बजेतक | सोम | आर्द्रा ,, ९। ३० बजेतक | १८ ,, | × × × × |
| दशमी ,, २। ४६ बजेतक | मंगल | पुनर्वसु ,, १०। ३९ बजेतक | १९ ,, | **कर्कराशि** दिनमें ४। २२ बजेसे। |
| एकादशी ,, ३। ५२ बजेतक | बुध | पुष्य ,, १२। १६ बजेतक | २० ,, | **भद्रा** दिनमें ३। १८ बजेसे रात्रिमें ३। ५२ बजेतक, **अमालकी एकादशीव्रत ( सबका ), मूल** रात्रिमें १२। १६ बजेसे। |
| द्वादशी रात्रिशेष ५। २७ बजेतक | गुरु | आश्लेषा ,, २। २१ बजेतक | २१ ,, | **सिंहराशि** रात्रिमें २। २१ बजेसे, **शक-संवत् १९४६ प्रारम्भ।** |
| त्रयोदशी अहोरात्र | शुक्र | मघा रात्रिशेष ४। ४४ बजेतक | २२ ,, | **प्रदोषव्रत, मूल** रात्रिशेष ४। ४४ बजेतक। |
| त्रयोदशी प्रातः ७। १९ बजेतक | शनि | पू०फा अहोरात्र | २३ ,, | × × × × |
| चतुर्दशी दिनमें ९। २४ बजेतक | रवि | पू०फा प्रातः ७। १८ बजेतक | २४ ,, | **भद्रा** दिनमें ९। २४ बजेसे रात्रिमें १०। २७ बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें १। ५७ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा, भद्रा** रात्रि १०। २७ के बाद **होलिकादाह।** |
| पूर्णिमा दिनमें ११। ३१ बजेतक | सोम | उ०फा० दिनमें ९। ५६ बजेतक | २५ ,, | **पूर्णिमा, काशीमें होली।** |

# कृपानुभूति

## शिवकृपाकी कतिपय घटनाएँ

(१)

### भगवान् शिवके संकेत

वर्ष २००४ से मैं रोज ऑफिसके बाद शामको श्रीताड़केश्वर मन्दिरके दर्शन करने जाता रहा हूँ। ताड़केश्वर मन्दिर जयपुरके प्राचीनतम शिवालयोंमें से एक है, जहाँ दर्शनार्थियोंकी काफी भीड़ रहती है, विशेषकर श्रावणके महीनेमें। आम दिनोंमें शाम ६ बजे बाबाका जलाभिषेक होता है। मुझे ज्यादातर दिन बाबाके जल अभिषेकका सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। श्रावणके महीनेमें जलाभिषेकका विशेष नियम लेता रहा हूँ और बाबाके आशीर्वादसे इस नियमका पालन भी होता रहा है, पर पिछले कुछ वर्षोंसे मन्दिरमें बाबाके विशेष शृंगारके लिये जलाभिषेकका समय कम किया जाता रहा है, जिसके कारण श्रावण महीनेके इस नियमके पालनमें मुझ-जैसे नौकरीपेशा भक्तके लिये मुश्किल होता जा रहा है। रोज ऑफिससे जल्दी निकलना या बहुत जल्दी मन्दिर जाकर ऑफिस आना भी सम्भव नहीं होता है। मन्दिर मेरे घरसे १४ किमी दूर है, ऐसी स्थितिमें अगर कोई जरूरी मीटिंग निकल आये तो मुश्किलें बढ़ जाती हैं।

इस वर्ष यह स्थिति और विकट होनेवाली थी; क्योंकि इस बार श्रावण दो महीनेका होनेवाला था। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए मैंने अपने इष्ट प्रभु श्रीताड़केश्वरनाथके सामने हाथ जोड़ते हुए विनती की कि इस वर्ष मुझे उसी परिसरमें स्थित बाबा नीलकण्ठ महादेवके अभिषेकका नियम लेनेकी आज्ञा प्रदान की जाय, जहाँ जलाभिषेक शाम देरतक भी सम्भव है। बाबा बड़े दयालु हैं, पहले श्रावण सोमवारसे एक रात पहले मुझे स्वप्नमें आभास हुआ कि जैसे बाबा कह रहे हों कि सोमवार और प्रदोषको तो सेवा कर लो। मैंने इसे अपना भ्रम मानते हुए सोमवारको ऑफिस जानेका निर्णय लिया। सुबह जैसे ही मैं ऑफिसके लिये निकला, ऑफिससे फोन आया कि आज मत आना; क्योंकि तेज बारिशके कारण आपके कमरेमें पानी भर गया है। यहाँ यह बताना उचित होगा कि मेरे विगत २३ वर्षोंकी नौकरीमें ऐसा पहले कभी नहीं हुआ है। मैं सीधा बाबा ताड़केश्वरनाथ चला गया और बाबाको देख बहुत भावुक हो गया था। ऐसे ही जब दूसरा सोमवार आया, तो भी अज्ञानतावश इन भावनाओंको महज भावुकता मानते हुए सुबह ऑफिसके लिये निकला। रास्तेमें गाड़ीके ब्रेक टाइट करवाने रुका, तो पता चला कि दुकानदार जल चढ़ाने गया है। रेड लाइटपर रुका, तो एक दम्पती मिले, जो जल चढ़ाने जा रहे थे, पत्नीसे पति बोल रहा रहा था कि जल्दी चलो, मुझे ऑफिस जाना है, पत्नी बोली, 'ऑफिस तो ३६५ दिनोंका है। श्रावण सोमवार तो ४ ही आते हैं, जल्दी क्यों करते हो!' फिर ऑफिस पहुँचा, तो पता चला कि चौकीदार भी जल चढ़ाने गया है। ऐसा लग रहा था मानो सभी मुझे कहना चाहते हैं कि बाबाने जो सोमवारका आदेश दिया है, उसको पूरा करो। मुझे बाबाके आदेशका पूरा भान होता जा रहा था और मैं हॉफ डे लेकर जब सेवाके लिये पहुँचा तो लगा जैसे वे इंतजार ही कर रहे थे। बाबा भोलेनाथ बड़े दयालु हैं और अपने भक्तोंकी भावनाका पूरा ध्यान रखते हैं। हम कुछ नहीं कर सकते; प्रभुकी जैसी इच्छा होती है, वैसा वे हमसे करवा लेते हैं। इस घटनासे यह तो सिद्ध हो गया कि प्रभु अगर एक बार हाथ पकड़ लेते हैं, तो वे छोड़ते नहीं; आपको सही रास्ता आगे भी दिखाते रहते हैं। **[ डॉ० श्रीमनीषजी तिवारी ]**

(२)

### क्या वे स्वयं शिव थे?

मैं प्रखंड कार्यालय भवनाथपुर, झारखंडमें चालकके पदपर कार्यरत हूँ और वर्ष १९७० से बाबा वैद्यनाथकी नगरी देवघर पैदल जाया करता हूँ। इधर दो-चार वर्षसे घुटनोंमें दर्दके कारण पैदल चलनेमें कठिनाई होती है,

इसलिये गाड़ीसे जाता हूँ, लेकिन वर्षमें दो बार बाबाके दर्शन करने अवश्य जाया करता हूँ। इसी क्रममें मैं पत्नीको भी साथ लेकर दिनांक १२-९-२०१८ को भवनाथपुरसे ट्रेनद्वारा चलकर दिनांक १३-९-२०१८ को उत्तरवाहिनी गंगाके किनारे पहुँचा, उस दिन गणेशचतुर्थी थी। हम दोनों पति-पत्नीने बाबा वैद्यनाथ एवं बाबा वासुकीनाथके नामसे जल संकल्प कराकर बाबाधामके लिये बसद्वारा प्रस्थान किया। लगभग साढ़े तीन बजे दिनमें बाबा नगरीसे कुछ इधर ही बसका कण्डक्टर बोला कि आगे मन्दिरके तरफ गाड़ी नहीं जायगी, आपलोग यहीं उतरकर चले जायँ।

हम दोनों पति-पत्नी उसी स्थानपर उतर गये, मेरे पास दो झोले थे, जो मेरे कन्धोंमें दोनों तरफ लटके हुए थे तथा चार डिब्बोंमें गंगाजल था, उसे मैंने गमछेके दोनों तरफ बाँधकर गर्दनमें लटका लिया था। पाँच लीटर गंगाजल पत्नीके पास था, वह उसे लेकर चल रही थी। कमर और घुटनेके दर्दके कारण हम दोनों धीरे-धीरे आगे-पीछे चल रहे थे, कोई ऑटोरिक्शा नहीं मिल रहा था। दर्दके मारे चला नहीं जा रहा था। ऐसेमें पत्नी बाबासे निवेदन करने लगी, 'बाबा धूप कड़ी है तथा दर्द भी बहुत है, समय भी कम है, मन्दिर ४ बजे बन्द हो जायगा, तो आज जल नहीं चढ़ पायेगा। आप ही कोई व्यवस्था कीजिये, जिससे मेरा जल आपको चढ़ जाय।' बाबासे वह यह प्रार्थना कर ही रही थी कि अचानक एक आशा जगी। एक सुन्दर बालक बिलकुल नयी कार (आई ट्वन्टी) लेकर आया तथा पत्नीके निकट आकर रुका। बड़े ही मधुरस्वरमें उसने पूछा—आप लोग मन्दिर जायँगे, पत्नी बोली, 'हाँ बेटा! मन्दिर ही तो जा रही हूँ। कोई सवारी भी नहीं मिल रही है और चला भी नहीं जा रहा है। बेटा, तुम थोड़ी मदद कर दो, शिवगंगापर छोड़ दो, तो मन्दिरपर चली जाऊँगी।' लड़का बोला, 'आइये, आपका ही कष्ट देखकर तो मैं इधर घूम गया।' तबतक मैं भी गाड़ीके पास चला गया। उसने पीछेका दरवाजा खोलकर पत्नीको बैठा दिया; फिर मुझसे बोला, 'आइये अंकल! आप आगे बैठ जाइये।'

मैं आगेका गेट खोलकर झोले कन्धेमें लटकाये बैठ गया। गेट बन्द कर लिया। गाड़ी स्टार्ट हुई तो मेरे झोलेके कारण गेयर लगानेमें दिक्कत होने लगी। लड़केने कन्धेसे झोले उतारकर सीटके बीचमें रख दिये तथा गाड़ी चलाने लगा। मैंने पूछा, 'बाबू! आपका घर कहाँ है?' वह बोला, 'मेरा घर भूतबंगलामें है, मैं तीर्थयात्रियोंकी सेवा करता हूँ तथा जिन तीर्थयात्रियोंको खाने-पीनेमें दिक्कत होती है, मैं बनवाकर खिला देता हूँ।' उसने पूछा, 'अंकल! आप अपना खाना स्वयं बनाते हैं?' नहीं, दो आदमी रखा हूँ।' मैंने पूछा, 'आप कहाँसे आ रहे हैं?' उसने कहा, 'मैं कालेज गया था, परीक्षाका फार्म लेने एवं वहाँसे लौटा तो सोचा कि पिताजीके लिये दवा लेता जाऊँ। इसलिये इधर आ गया। आप लोगोंका कष्ट देखकर बैठा लिया।' मैंने पूछा, 'किस क्लासकी परीक्षा देनी है?' एम.ए. की। मैंने कहा, कम्पटीशन क्यों नहीं देते?' वह बोला कि परीक्षा दिया हूँ, रिजल्ट नहीं आया है। आप आशीर्वाद दें मेरी नौकरी लग जाय। मैंने कहा, '२०१९ खाली नहीं जायगा। मैं आपकी नौकरीके लिये बाबासे पैरवी करूँगा। आपकी नौकरी अवश्य लगेगी।'

बीचमें दवाकी दुकान आयी, लड़का गाड़ी बन्द करके बोला, 'एक मिनटमें लौट रहा हूँ।' उतरकर दवाकी दुकानमें गया, तब मैं पत्नीसे बोला, 'मुझे अनुभव हो रहा है कि यही लड़का बाबा है।' वह बोली, 'हो सकता है।' मैंने पूछा कि आपका नाम क्या है? उसने कहा, 'मेरा नाम अमर कुमार है।' इतनेमें गाड़ी शिवगंगापर पहुँच गयी। पंडाके यहाँ उतरना था, लेकिन पंडाका दरवाजा बन्द था। मैं बालकसे बोला कि आप हमको यहीं छोड़ दीजिये, हमलोग यहींसे चले जायँगे। उसने पूछा कि आप कहाँ ठहरेंगे? मैं बोला कि बालिका विद्यालयके सामने श्रीराम आश्रम है, वहीं ठहरूँगा। वह बोला, 'चलिये, मेरा भी रास्ता उधरसे ही है, उधरसे ही चला जाऊँगा।' गाड़ी कुछ समयमें आश्रमके पास पहुँच गयी। मैं बोला 'यहीं हमको उतार दीजिये।' गाड़ी रुक गयी। लड़का गाड़ीसे उतरकर

पत्नीके बगलमें जाकर गेट खोला और पत्नीका हाथ पकड़कर उतारा तथा गंगाजल हाथमें लेकर आश्रममें पहुँचाया और बेंचपर बैठाने लगा। पत्नी बोली, 'मैं आपका पैर छूना चाहती हूँ' तथा पैरकी ओर झुकी, लेकिन उसने पैर नहीं छूने दिया तथा बोला—'आप माताजी हैं, मेरा पैर कैसे छूयेंगी।' तो पत्नीने उसके सिरका स्पर्शकर कहा—'पैर नहीं छुऊँगी, लेकिन आशीर्वाद तो दे ही सकती हूँ।' पंडाजी श्रीराघवानन्द झा जो वहीं लेटे थे, लड़केने उनके पैर छूकर उनको प्रणाम किया। मैंने कहा 'मैं बादमें रूम लूँगा, सामान यही रहने दें। मन्दिरसे लौटनेके बाद रूम लेंगे।'

चार बज चुका था, पंडाजी बोले कि आज मन्दिर बन्द हो गया होगा। जल कल चढ़ाना। लेकिन उस लड़केने पत्नीको इशारा किया कि तुम मन्दिर जाओ, जल चढ़ जायगा। जल्दी करो। हम दोनों जलके गैलनको खोलनेमें उलझ गये। पंडाजीने एक रिक्शा रोक दिया तबतक लड़केपरसे ध्यान अलग हो गया, मुड़कर देखा तो वह लड़का गायब हो गया तथा गाड़ी भी गायब हो गयी ? मैंने पंडाजीसे पूछा कि वह लड़का कहाँ गया तथा गाड़ी किधर गयी ? वे बोले, मैंने तो नहीं देखा, मैं मन्दिर गया, बहुत ही बढ़ियासे बाबाका जलाभिषेक किया, वापस आनेपर निराशा हाथ लगी, काफी रोया, लेकिन कोई फायदा नहीं। मुझे विश्वास है कि वे साक्षात् शिव ही थे। भगवान् वैद्यनाथने ही उस बालकके रूपमें आकर हमारी सहायता की। **[ श्रीरामशंकरलाल कर्ण ]**

(३)

## जब भगवान् शिवने अपने भक्तको भोजन कराया

मेरे पिताजी स्व० श्रीबाँकेलाल गुप्ता वैद्य गाँव चौढेरा जिला बुलन्दशहर (उ०प्र०)-में रहते थे। वे एक आदर्श पुरुष थे। उन्होंने अपने जीवनकालमें सदैव गरीब, लाचार, असहाय लोगोंकी सब प्रकारसे सहायता की। वे अपने पाससे बिना मूल्य लिये चिकित्सा करते थे तथा आवश्यक होनेपर भोजन एवं ठहरनेकी व्यवस्था भी करते थे। वे भगवान् शिवके बड़े भक्त थे। हमेशा उनके हाथमें माला रहती थी, और वे हर समय '**ॐ नमः शिवाय**' का भजन करते रहते थे।

यह सुखद घटना सन् १९८० ई०-की है। उस समय मेरी माताजी मेरे छोटे भाई डॉ० विजय प्रकाश वार्ष्णेयके पास बरेलीमें थी। वह वहाँ इण्डियन वैटर्निकल रिसर्च इंस्टीट्यूट (आई०वी०आर०आई०)-में कार्यरत था। स्व० पिताजी मेरी माताजीको लेने रेलगाड़ीसे बरेलीके लिये निकले। उन्होंने मेरे दूसरे छोटे भाई डॉ० गिर्राज किशोर वार्ष्णेयके ससुरको पत्रद्वारा सूचित किया था कि वे अमुक तारीखको चन्दौसी होते हुए बरेली जा रहे हैं। यह गाड़ी चन्दौसी स्टेशनपर रात्रि ७ बजे पहुँचती है। यथासमय छोटे भाईके ससुर स्व० देवपाल गुप्ताजी अपने साथ खानेका डिब्बा लेकर स्टेशनपर पहुँचे और मेरे पिताजीको अपने साथ लाया हुआ स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजनके बाद मेरे पिताजी बरेलीके लिये प्रस्थान कर गये।

कुछ दिन बाद मेरे पिताजीने फिर स्व० देवपाल गुप्ताको पत्रद्वारा सूचित किया कि वे अमुक तारीखको दोपहर एक बजे चन्दौसी स्टेशनपर मिलें। वे यथासमय मेरे पिताजीको चन्दौसी स्टेशनपर मिले और उन्हें स्वादिष्ट भोजन कराया। मेरे पिताजीने उन्हें बरेली जाते समय भोजन करानेके लिये धन्यवाद दिया, तब श्रीदेवपालजीको बहुत आश्चर्य हुआ और कहा कि उन्हें बरेली जानेके बारेमें कोई सूचना नहीं थी और न वे स्टेशनपर आये थे। मेरे पिताजीको समझनेमें कोई देरी नहीं हुई कि यह सब भगवान् शिवका ही प्रसाद था, जो उन्होंने अपने भक्तको उस समय उपलब्ध कराया, जब उन्हें इसकी बहुत आवश्यकता थी। इससे प्रतीत होता है कि भगवान् हमेशा अपने भक्तोंका पूरा ध्यान रखते हैं, अगर भक्त सच्चे मनसे उन्हें याद करता है, तो वे उसकी हर समस्याका समाधान कर देते हैं। **[ श्री डी०एन० वार्ष्णेय ]**

# पढ़ो, समझो और करो

(१)

## अनुशासन और नेतृत्व

सन् १९३० ई०की बात है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके द्वितीय सर संघ चालक श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर उर्फ गुरुजी उन दिनों काशीहिन्दू विश्वविद्यालयमें साइंस विभागमें प्राध्यापक थे। एक दिन विश्वविद्यालयमें स्नेह-मिलन समारोहका आयोजन हुआ। संघके स्वयंसेवकोंकी अनुशासनबद्धताको देखते हुए माननीय मदनमोहन मालवीयजीने व्यवस्थाकी सारी जिम्मेवारी गुरुजीको सौंप दी। व्यवस्था उत्तम थी। महिलाओंके लिये अलग द्वारसे जानेका प्रबन्ध था। एक प्राध्यापक, जो अपनेको आधुनिकताका प्रतीक बताते थे, वे महिलाओंके लिये निश्चित द्वारसे अन्दर जाने लगे। उस समय संघके स्वयंसेवकोंने उन्हें रोक दिया और पुरुषोंके लिये बने द्वारसे अन्दर जानेका अनुरोध किया। वे प्राध्यापक श्रीमान् मालवीयजीके अत्यन्त प्रिय लोगोंमें थे। इस कारण वे सारे दरवाजे अपने लिये खुला मानते थे। उन्हें रोक दिया गया। वे समारोह-स्थलतक नहीं पहुँच सके। गुरुजीने उन्हें समझाया। अनुशासनमें रहनेकी सीख दी। वे नहीं माने और देख लेनेकी धमकी देते हुए सभास्थलसे लौट गये। स्नेह-समारोह व्यवस्थित ढंगसे पूर्ण हुआ। संघके कार्योंकी सभी लोगोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की।

परंतु इस घटनाका परिणाम समारोहकी समाप्तिके बाद अनुभव होने लगा। पंडित मालवीयजीके पास इस घटनाकी जानकारी पहुँच चुकी थी। उन्होंने गुरुजीको बुलाया। गुरुजीने सारी बातें उन्हें बतायीं और कहा, 'व्यवस्थाकी सारी जिम्मेवारी हमें सौंपी गयी थी, अत: उसका पालन हर किसीको करना चाहिये था। इसमें गलत क्या हुआ? हमसे गलती हुई हो तो हम एक बार नहीं सौ बार क्षमा माँगनेके लिये तैयार हैं, पर जब हमारा कर्तव्य न्यायपूर्ण है, तो क्षमा माँगनेका प्रश्न ही नहीं उठता।'

पंडित मालवीयजीको गुरुजीकी दृढ़नीतिपर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अनेक बैठकोंमें संघके अनुशासनकी प्रशंसा की।

दूसरी घटना सितम्बर, १९४७ ई०की है। पंजाबमें भीषण बाढ़ आयी हुई थी। श्रीगुरुजीको जालन्धरसे फगवाड़ाके कार्यक्रममें शामिल होनेके लिये जाना था।

जालन्धरके पास नदीमें भयंकर बाढ़के कारण रेलवे पुलके बीचके खम्भे बह गये थे। रेलकी पटरियाँ केवल इधर-उधरके दो आधारोंपर लटकी हुई थीं। जालन्धरसे नदी पार करनेका और कोई मार्ग नहीं था। लटकी हुई रेल पटरियोंको पार करना खतरेसे खाली नहीं था।

श्रीगुरुजी फगवाड़ाके कार्यक्रममें पहुँचनेके लिये दृढ़ संकल्प ले चुके थे। उन्हें खतरेके नामपर रोका नहीं जा सकता था। योजना बनी कि उनके आगे कुछ स्वयंसेवक और पीछे कुछ स्वयंसेवक और बीचमें गुरुजी चलेंगे। सतर्कतासे स्लीपरोंपर पैर रखते हुए उसे पार कर लेंगे। परंतु गुरुजी जैसे ही पुलपर पहुँचे कि वे तेजीसे आगे बढ़कर सबसे आगे हो गये। स्वयंसेवकोंकी योजना धरीकी धरी रह गयी। नाममात्रको लटकी हुई रेल पटरीके स्लीपरोंपर वे निर्भीकताके साथ अपने चरण बढ़ाते हुए पार हो गये। तबतक लोगोंकी जानमें जान नहीं आयी, जबतक वे सकुशल पार नहीं पहुँच गये। वस्तुत: नेताके लिये यही गुण अनिवार्य है कि वह स्वयं खतरा उठाये। [ **श्रीउमेशप्रसादसिंहजी** ]

(२)

## गीताका अद्भुत चमत्कार

कई बार जीवनमें ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जो तर्कबुद्धिसे समझमें नहीं आतीं। वैसे तो ईश्वर सदैव-सर्वत्र व्याप्त है, परंतु ऐसी घटनाएँ उसकी उपस्थिति अनुभव करनेका अवसर प्रदान करती हैं। भगवान् कृष्णकी वाणी होनेके कारण गीता उच्च आध्यात्मिक

ग्रन्थ होनेके साथ-ही-साथ जाग्रत् देवता भी है। कई आध्यात्मिक विभूतियोंका अनुभव है कि गीताका निरन्तर पठन-पाठन और मनन करनेसे वह कृपा करती है और अन्तर्मनमें बोलने लगती है, मार्गदर्शन करने लगती है। मैं अपने शिक्षागुरु डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी शर्माका कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने लगभग ४० वर्ष पूर्व मुझे गीतापाठी बना दिया।

श्रीरवीन्द्र शर्मा, वर्ष १९८२ से ८५ तक ग्वालियरमें कॉलेज हॉस्टलमें मेरे रूम पार्टनर रहे हैं और मित्र हैं। मैं कई बार उनके घर गया हूँ और उनकी माताजीका स्नेहभाजन रहा हूँ। कुछ दिन पहले पता चला कि माताजी कैंसरसे पीड़ित हैं। मैं और मेरी पत्नी भारती लगभग १५ दिन पहले मुरैना गये। माताजी कष्टमें थीं, पर बात कर रही थीं। उनसे मिलकर वापस आ गये और रोजमर्राके कामोंमें लग गये। ७ जुलाई, २३ को पता चला कि एक शासकीय कार्यको लेकर लोकायुक्तने मेरे विरुद्ध आपराधिक प्रकरण दर्ज कर लिया है। स्वाभाविक है, मैं इसे लेकर चिन्तित था और शुभचिन्तकोंके फोन भी आ रहे थे। दूसरी ओर मन यह कह रहा था कि यह अवसर है जब मैं स्वयं अपना मूल्यांकन करूँ कि कठिन स्थितियोंमें मैं कितना स्थितप्रज्ञ रह पाता हूँ। दूसरे दिन ८ जुलाईको इसी सम्बन्धमें कुछ वरिष्ठ अधिकारियोंसे मिलने और अन्य तैयारियाँ करनेके लिये समय ले रखा था।

८ जुलाईको दोपहर ११ बजे लोगोंसे मिलनेके लिये जब मैं घरसे निकल ही रहा था कि मुझे ऐसा लगा कि अन्दरसे कोई कह रहा है कि रवीन्द्रकी माताजीको गीतापाठ सुनाना चाहिये। इस भावके आते ही, अपने प्रकरणकी चिन्ता छोड़, मैं सारे कार्यक्रम निरस्तकर तत्काल रिजर्वेशन कराकर दोपहरकी ट्रेनसे भारतीके साथ रात ग्वालियर पहुँच गया। जाते समय मेरा विचार था कि ९ जुलाईको सबेरे ऑफिसकी फाइलें निपटानेके बाद मैं दोपहरमें मुरैना जाऊँगा और गीतापाठ सुनाकर रातकी ट्रेनसे भोपाल आ जाऊँगा, परंतु ट्रेनमें बैठते ही भाव आया कि गीता तो सुबह ही सुनानी है। मैंने अपने स्टेनोको फोन किया और कहा कि ऑफिसकी फाइलें रातमें ही देखूँगा और सुबह मुरैना जाऊँगा। लिहाजा जब मैं ग्वालियर पहुँचा, तो मेरा पूरा स्टाफ फाइलोंके ५ बस्ते लेकर मेरे बँगलेपर उपस्थित था। रात १ बजेतक सारी फाइलोंपर हस्ताक्षर किये और ९ जुलाईको सबेरे ९ बजे मुरैना पहुँच गया।

मेरे पहुँचनेके पहले ही माताजीके कमरेमें भगवान् श्रीकृष्णकी फोटो, गीता और पूजन-सामग्री तैयार थी। माताजी अत्यन्त कष्टमें कराह रही थीं। कैंसर सारे शरीरमें फैल चुका था। मैंने और रवीन्द्रने सस्वर गीतापाठ प्रारम्भ किया। हम हर अध्यायके बाद शंखध्वनिके साथ श्रीकृष्णार्पणमस्तु कर रहे थे। तीन-चार अध्याय पूरे होते-होते कराहनेकी आवाज कम हुई। ऐसा लगा जैसे अर्धमूर्च्छित-अवस्थामें भी वे सुन रही हों। १०वाँ अध्याय भगवान्का विभूतियोग है। उसे प्रारम्भ करनेके पूर्व मैंने कहा, 'माताजी, भगवान् अपनी दिव्य विभूतियोंके माध्यमसे कण-कणमें व्याप्त हैं, आप इनको सुनो।' इसके बाद संस्कृतमें सस्वर पाठ किया। १०वाँ अध्याय समाप्त होते-होते माताजीकी श्वासकी गति बदलने लगी। मुझे लगा कि प्रयाणका समय आ गया है। मैंने रवीन्द्रसे कहा कि तुम माताजीके पास जाओ और अब भारतीने मेरे साथ गीताका पाठ शुरू कर दिया। माताजीके चारों ओर परिजन एकत्र होने लगे। हमने ११वाँ अध्याय शुरू किया। ११वाँ अध्याय अद्भुत है, जिसमें भगवान्के विश्वरूपका दर्शन है, उस रूपमें भगवान्की स्तुति और फिर चतुर्भुजरूपका वर्णन है। मैंने कहा—माताजी! ध्यानसे सुनें, भगवान्का दिव्य स्वरूप ऐसा है, जैसे करोड़ों सूर्य एक साथ उदय हो गये हैं। उनका रूप अनन्त है, वे मुकुट, गदा, शंख और चक्र धारण किये हैं। यह

गीताके श्लोकोंका ही हिन्दी अनुवाद था। इसके साथ ही संस्कृतमें सस्वर पाठ प्रारम्भ हो गया। अब प्रयाणका समय आ गया था। दो तेज श्वास लेनेके साथ ही माताजी जा चुकी थीं। हमने उसके बाद भी पाठ जारी रखा। १८ अध्यायतक पूरा पाठ किया। कमरेमें एक दिव्यताकी अनुभूति हो रही थी। माताजीके पार्थिव चेहरेपर अद्‌भुत तेज और शान्ति थी और ऐसा महसूस ही नहीं हो रहा था कि इस कमरेमें अभी-अभी किसीकी मृत्यु हुई है और पार्थिव शरीर सामने रखा है। ईश्वरीय प्रेरणाने ही मुझे अपने सारे कार्य छोड़कर गीतापाठ करनेके लिये माताजीके देहान्तसे ठीक दो घंटे पहले मुरैना पहुँचनेपर विवश कर दिया।

ऐसा ही अनुभव मुझे २८ मार्च १९९८को हुआ था जब मेरी ९४ वर्षीय दादीका स्वर्गवास हुआ था। उन्हें ब्रेन हेमरेज हुआ था और वह १० दिनोंसे कोमामें थीं। उस दिन सुबह ४ बजेसे मैंने गीता सुनाना शुरू किया और सबेरे ५.३० बजेके करीब ग्यारहवें अध्यायमें भगवान्‌के विश्वरूपका वर्णन सुनते हुए ही उन्होंने देहत्याग किया था। तब उनके पार्थिव चेहरेकी शान्ति और तेज देखकर सभी लोग आश्चर्यमें पड़ गये थे।

गीतामें भगवान्‌ने स्वयं कहा है कि '**यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरं। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभाविता॥**' अर्थात् जिस-जिस भी रूप-आकारका स्मरण करता हुआ मनुष्य देह त्यागता है, वह उसे ही प्राप्त करता है। हे कौन्तेय! इसलिये जब कोई गीता सुनते हुए देह त्यागता है, तो भगवान्‌के ध्यानमें लीन रहनेके कारण उसकी परमगति निश्चित है। वही परमशान्ति और तेज पार्थिव चेहरेपर दिखने लगता है और मृत्युका अवसर भी एक दिव्य आभासे आलोकित हो उठता है अर्थात् गीतापाठीके लिये उसकी मृत्यु भी मंगलमय हो जाती है। **[ श्रीओमप्रकाशजी श्रीवास्तव ]**

(२)

## गरीब ईमानदार

दिनांक ६ मार्च १९७८ ई०की बात है। बसमें जलपाईगुड़ीसे आते समय मुझे गैरकाटा उतरना पड़ा। अपनी घड़ी देखी, शामके करीब पाँच बज चुके थे। दस-पन्द्रह मिनट बाद ही नथुआ बाजारसे हाठवास जानेवाली यह बस 'जयगणेश' रुकी तो गैरकाटाके तथा वीरपाड़ाकी ओर जानेवाले कुछ यात्री उतरे। भीड़ थी। मैं भी एथलवाड़ी मोड़पर उतर गया, जो गैरकाटासे चार मीलपर है। वहाँ चायकी दुकानमें अपनी साइकिल रखी थी। कैरियरमें सामान बाँधकर समय देखनेके लिये पुनः ज्योंही घड़ीपर नजर डाली तो हाथमें घड़ी नहीं थी। मनमें कुछ चिन्ता हुई, तब वापस वीरपाड़ा जानेका निश्चय किया। सोचा यदि घड़ी बसमें गिरी होगी तो बसवालेको मिलनेपर अवश्य मिल जायगी। यह निश्चयकर साइकिलसे ही चला। सायंकाल करीब छः बजे वीरपाड़ा पहुँचा। बस खाली हो गयी थी, चढ़कर घड़ी खोजने लगा। इतनेमें ही कण्डक्टरने कहा—'क्या खोज रहे हैं?' मैंने उत्तर दिया—'घड़ी खोज रहा हूँ। गाड़ीमेंसे उतरते समय कहीं गिर गयी है।' कण्डक्टर बोला—'आपकी ही घड़ी है वह? एक घड़ी अभी कुछ देर पहले खलासीको मिली है। वह साहबके पास दे आया है।'

खलासीने वह घड़ी बस-मालिकके पास जमा कर दी थी। अभी इतनी बात हो ही रही थी कि खलासी भी आ गया! उसने सारी बातें सुनकर मेरे द्वारा घड़ीकी पहचान बतानेपर जल्दीसे जाकर मोटरमालिकके पाससे घड़ी ला दी और मुझे सौंप दी। मुझे घड़ी दे करके वह गरीब खलासी बड़े ही आत्मसन्तोषका अनुभव कर रहा था। धन्य हैं ऐसे लोग, जो गरीब होते हुए भी ईमानदार हैं।

**[ श्रीधनपतजी शाह ]**

# मनन करने योग्य

## भगवान् नारायणका भजन ही सार है

महान् सन्त श्रीविष्णुचित्त पेरि-आळ्वारमें बाल्यकालसे ही भगवद्भक्तिके चिह्न दीखने लगे थे। यज्ञोपवीत-संस्कार होनेके बाद ही बालकने बिना जाने-पहचाने अपने तन-मन और प्राण भगवान् श्रीनारायणके चरणोंमें समर्पित कर दिया था। श्रीनारायणके रूपका ध्यान, उनके नामका जप तथा श्रीविष्णुसहस्रनामका गायन वे किया करते थे। युवावस्थामें पदार्पण करते ही उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति बेचकर एक उर्वरा भूमि ले ली और उसमें एक सुन्दर बगीचा लगाया। प्रतिदिन वे प्रात:काल उठकर 'नारायण' नामका जप करते हुए पुष्प-चयन करते और उसकी माला बनाकर भगवान् नारायणको पहनाते और मन-ही-मन प्रसन्न होते। एक दिन रात्रिमें उन्हें श्रीनारायणने स्वप्नमें कहा—''तुम मदुराके धर्मात्मा राजा बलदेवसे मिलो, वहाँ सब धर्मोंके लोग एकत्र होंगे। वहाँ जाकर तुम मेरे प्रेम और भक्तिका प्रचार करो। तुम वहाँ 'भगवान्‌के सविशेष रूपकी उपासना ही आनन्द प्राप्त करनेका सच्चा और सरल मार्ग है' यह प्रमाणित कर दो।''

विष्णुचित्त भगवान्‌का आदेश पाकर प्रसन्नतासे खिल उठे। वे बोले, 'प्रभो! मैं अभी मदुराके लिये प्रस्थान करता हूँ; किंतु मुझे शास्त्रोंका किंचित् भी ज्ञान नहीं। आपके चरणोंको अपने हृदेशमें विराजितकर मैं सभामें जा रहा हूँ। आप जैसा चाहें, यन्त्रवत् मुझसे करा लें।' विष्णुचित्त मदुरा चले।

बलदेव नामक राजा मदुरा और तिन्नेवेली जिलोंपर शासन करते थे। उन्हें प्रजाके सुखका अत्यधिक ध्यान था। इसी कारण वे कभी-कभी अपना वेश बदलकर रात्रिमें घूमा करते थे। एक दिन रात्रिमें घूमते हुए उन्होंने वृक्षके नीचे विश्राम करते हुए एक ब्राह्मणको देखा। राजाने उनसे परिचय पूछा और ब्राह्मणने बताया कि मैं गंगा-स्नान करने गया था और अब सेतू नदीमें स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ। रातभर विश्राम करनेके लिये यहाँ ठहर गया हूँ। राजाने उनसे कुछ अनुभवकी बात पूछी। ब्राह्मणने कहा—

**वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान् निशार्थमर्थं दिवसं यतेत।**
**वार्द्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिहजन्मना च॥**

राजाके पूछनेपर उन्होंने अर्थ किया—'मनुष्यको चाहिये कि आठ महीनेतक खूब परिश्रम करे, जिससे वह वर्षा-ऋतुमें सुखपूर्वक खा सके; दिनभर इसलिये परिश्रम करे कि रातको सुखकी नींद सो सके; जवानीमें बुढ़ापेके लिये संग्रह करे और इस जन्ममें परलोकके लिये कमाई करे।'

इस उपदेशसे राजा बहुत प्रभावित हुए। ब्राह्मणने उनके मनमें भक्तिका बीज डाल दिया था। लौटकर उन्होंने समस्त धर्मोंके आचार्योंको एकत्रकर उपर्युक्त निश्चय किया था, जिससे उन्हें सन्तोंका संग एवं उनका उपदेश सुननेका अवसर मिल जाय।

पण्डित-मण्डलीमें विष्णुचित्त शान्तभावसे भगवान् श्रीनारायणका स्मरण करते हुए बैठे। उन्होंने सबकी शंकाओंका बड़े ही सरल शब्दोंमें समाधान कर दिया। उनका प्रभाव सबपर पड़ा। उन्होंने विस्तारसे समझाया—'भगवान् श्रीनारायण ही सृष्टिके निर्माता, पालक एवं प्रलयकालमें समेट लेनेवाले हैं। वे ही सर्वोपरि देव हैं। सर्वतोभावेन अपना जीवन उनके चरणप्रान्तमें अर्पित कर देना ही कल्याणका एकमात्र मार्ग है। वे ही हमारे रक्षक हैं। महात्मा पुरुषोंकी रक्षा एवं दुष्टोंका दलन करनेके लिये ही वे समय-समयपर पृथ्वीपर अवतरित होकर धर्म-संस्थापनका कार्य करते हैं। इस मायामय जगत्‌से त्राण पानेके लिये विश्वासपूर्वक उनपर तन-मन न्योछावरकर उनकी आराधना करनी चाहिये। उनके नामका जप एवं उनके गुणोंका गान करना चाहिये।'

भगवान् नारायणका भजन ही जीवनका सार है। इनके दिव्य उपदेशसे सभी प्रभावित हुए और भगवान् नारायणकी भक्तिमें लग गये। [ **श्रीशिवनाथजी दुबे** ]

॥ श्रीहरिः ॥

( भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र )

# 'कल्याण'

*-के ९७वें वर्ष ( वि०सं० २०७९-८०, सन् २०२३ ई० )-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके*

# निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

*( विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है। )*

## निबन्ध-सूची


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १- अध्यात्म ( श्रीशम्भूनाथजी पाण्डेय ) | सं०५-पृ०३२ |
| २- अनिद्रा—नींद न आना ( योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द' ) | सं०७-पृ०३५ |
| ३- अन्तर्दृष्टि ( पं० श्रीत्रिलोकीनाथजी उपाध्याय ) | सं०५-पृ०२१ |
| ४- अपना समाजवाद ( पं० श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी 'डाँगीजी' ) | सं०१०-पृ०१८ |
| ५- अभिमानका पराभव | सं०१०-पृ०३४ |
| ६- अलबेला भक्त—केवट ( श्रीदयानन्दजी यादव ) | सं०२-पृ०२८ |
| ७- अष्टमूर्तिस्तव | सं०१२-पृ०२५ |
| ८- आत्मज्ञानसे ही मुक्ति ( श्रीदयानन्दजी यादव ) | सं०६-पृ०२६ |
| ९- आदर्श जीवनकी संजीवनी है—'श्रीरामचरितमानस' ( श्रीमदनमोहनजी अग्रवाल ) | सं०५-पृ०१७ |
| १०- आराधनाकी पगडण्डियाँ ( श्रीसुरेशजी शर्मा ) | सं०७-पृ०२४ |
| ११- **आवरणचित्र-परिचय—** | |
| [क] भगवती श्रीपार्वती | सं०२-पृ०७ |
| [ख] रामावतार | सं०३-पृ०७ |
| [ग] भक्त सूरदास | सं०४-पृ०७ |
| [घ] गोपालकी गो-पूजा | सं०५-पृ०७ |
| [ङ] दिव्यलोकमें श्रीकृष्णकी एक झाँकी | सं०६-पृ०७ |
| [च] वीरवर अर्जुन | सं०७-पृ०७ |
| [छ] ब्रह्माजीका मोह | सं०८-पृ०७ |
| [ज] शिव-परिवार | सं०९-पृ०७ |
| [झ] भरत-मिलाप | सं०१०-पृ०७ |
| [ञ] ब्रह्माजीका गायोंको वरदान | सं०११-पृ०७ |
| [ट] श्रीकृष्णका अर्जुनको गीताकी महिमा बताना | सं०१२-पृ०७ |
| १२- आसुरीसम्पदाके नाशके उपाय | सं०४-पृ०३६ |
| १३- आहार-विज्ञान ( प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़ ) | सं०१२-पृ०३० |
| १४- इन्द्रियोंको वशमें कैसे करें ? | सं०११-पृ०२८ |
| १५- ईश्वर ( श्रीमोहनलालजी पारख ) | सं०४-पृ०२८ |
| १६- ईश्वरका न्याय [प्रस्तुति—श्रीशिवकुमारजी गोयल] | सं०६-पृ०२८ |
| १७- ऋतु-अनुसार खान-पान उत्तम स्वास्थ्यका आधार ( प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़ ) | सं०५-पृ०४२ |
| १८- एक ज्वलन्त प्रश्न ? | सं०३-पृ०४३ |
| १९- कलिकालमें गुरुकी महिमा | सं०७-पृ०१८ |
| २०- **कल्याण—** | |
| सं०२-पृ०६, सं०३-पृ०६, सं०४-पृ०६, सं०५-पृ०६, सं०६-पृ०६, सं०७-पृ०६, सं०८-पृ०६, सं०९-पृ०६, सं०१०-पृ०६, सं०११ पृ०६, सं०१२-पृ०६ | |

| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| २१- कल्याणका आगामी ९८वें वर्ष ( सन् २०२४ ई० )-का विशेषाङ्क ' **संक्षिप्त आनन्दरामायणाङ्क** ' ..... | सं०७-पृ०५० |
| २२- काकभुशुण्डिकी आत्मकथा ( श्रीशिवदत्तजी पाण्डेय, साहित्याचार्य ) | सं०१०-पृ०१२ |
| २३- कायाकल्प एवं मनःकल्पका आधार ( डॉ० श्रीओमप्रकाशजी आनन्द ) | सं०८-पृ०२१ |
| २४- कुन्तीकी कृष्णभक्ति ( श्रीभगवानलालजी शर्मा 'प्रेमी' ) | सं०६-पृ०३३ |
| २५- कुसंग सर्वथा परित्याज्य ( श्रीभगवानलालजी शर्मा 'प्रेमी' ) | सं०९-पृ०१९ |
| २६- **कृपानुभूति—** | |
| सं०२-पृ०४५, सं०३-पृ०४६, सं०४-पृ०४६, सं०५-पृ०४६, सं०६-पृ०४५, सं०७-पृ०४४, सं०८-पृ०४३, सं०९-पृ०४५, सं०१०-पृ०४३, सं०११-पृ०४६, सं०१२-पृ०३९ | |
| २७- कृष्णावतार ही पूर्णावतार है ( श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला ) | सं०८-पृ०१७ |
| २८- कैसे प्राप्त हो सद्बुद्धि ? ( श्रीबरजोर सिंहजी ) | सं०३-पृ०२७ |
| २९- गण्डूष-क्रिया एवं कवल-क्रिया ( योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द' ) | सं०११-पृ०३३ |
| ३०- गायत्री-जपकी महिमा ( श्रीरामकिशोरजी सिंह 'विरागी' ) | सं०९-पृ०३० |
| ३१- गीताका भक्तियोग और मीराकी प्रेम-साधना ( आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा ) | सं०४-पृ०१८ |
| ३२- गीतामें कूट श्लोकोंका प्रयोग ( डॉ० श्रीलक्ष्मीनारायणजी धूत ) | सं०१०-पृ०२१ |
| ३३- गीतामें राजधर्मके सूत्र ( श्रीहरिरामजी सावला ) | सं०३-पृ०२२ |
| ३४- गीतामें वर्णित गुणत्रय ( साहित्यवाचस्पति श्रीयुत डॉ० श्रीरंजनजी सूरिदेव ) | सं०७-पृ०३६ |
| ३५- गुमनाम साधु-सन्तोंकी भक्तिमय रचनाएँ ( श्रीउमेशप्रसाद सिंहजी ) | सं०८-पृ०२८ |
| ३६- गुरु अर्जुनदेवकी विनम्रता ( श्रीबलविन्दरजी बालम ) | सं०९-पृ०२९ |
| ३७- गुरु-वन्दना ( गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज ) | सं०७-पृ०१० |
| ३८- गेहूँके पौधेमें रोगनाशक ईश्वरप्रदत्त अपूर्व गुण ( श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय ) | सं०४-पृ०३७ |
| ३९- **गो-चिन्तन—** | |
| [क] सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणी' में गो-चिन्तन ( श्रीबद्रीनारायणजी विश्नोई ) | सं०२-पृ०४२ |

[ख] चरक-संहितामें गोमूत्रवाले योग
(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़) ..... सं०३-पृ०४२
[ग] चरक-संहितामें गोघृतकी चिकित्सकीय उपयोगिता
(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़) ..... सं०४-पृ०४२
[घ] आयुर्वेदमें गायके गोबरके उपयोग
(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़) ..... सं०६-पृ०४१
[ङ] गोहत्या—महापाप ..... सं०७-पृ०४२
[च] गोपालका गोचारण (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी
श्रीकरपात्रीजी महाराज) ..... सं०८-पृ०३६
[छ] पौराणिक ग्रन्थोंमें गौका महत्त्व
(डॉ० श्रीश्याम मनोहरजी व्यास) ..... सं०९-पृ०४०
[ज] गोभक्त—दाना भगत
(डॉ० श्रीकमलजी पुंजाणी) ..... सं०१०-पृ०३५
[झ] गोमय कला और लोक मान्यताएँ
(डॉ० श्रीमती प्रेषिकाजी द्विवेदी) ..... सं०११-पृ०४०
[ञ] गो-महिमा (श्रीमद्जगद्गुरु द्वाराचार्य श्रीमलूक-
पीठाधीश्वर स्वामी श्रीराजेन्द्रदास देवाचार्यजी
महाराज) ..... सं०१२-पृ०३४
४०- 'गंग सकल मुद मंगल मूला' (श्रीराधानन्दसिंहजी) . सं०६-पृ०१८
४१- चार पुरुषार्थ (श्रीदिलीपजी देवनानी) ..... सं०१०-पृ०२६
४२- जगदम्बा सतीजीकी मोह-लीला
(डॉ० श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी) ..... सं०५-पृ०२०
४३- जाम्भोजीकी गोसेवा (श्रीमाँगीलालजी बिश्नोई 'अज्ञात',
एम०ए०, बी०एड०) ..... सं०१२-पृ०३५
४४- जीव कब जाग्रत् होता है
(सन्तप्रवर श्रद्धेय श्रीपथिकजी महाराज) ..... सं०११-पृ०१०
४५- जीवनकी प्रथम आवश्यकता—अभय
(श्रीशिवानन्दजी) ..... सं०४-पृ०२२
४६- जीवनमें सफलताकी कुंजी
(प्रो० श्रीहंसराजजी अग्रवाल) ..... सं०८-पृ०२२
४७- 'जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे···· ?' ..... सं०७-पृ०३०
४८- डेंगू बुखार—सामान्य किंतु बेहद घातक
(डॉ० श्रीपंकजजी श्रीवास्तव, एम०एस०) ..... सं०१०-पृ०२४
४९- **तीर्थ-दर्शन—**
[क] कामरूप और माँ कामाख्या
(डॉ० श्रीश्यामबाबूजी शर्मा) ..... सं०२-पृ०३९
[ख] गंगातटस्थित बिठूर (कानपुर)-का दण्डीबाड़ा
(श्रीशिवगोपालजी शुक्ल) ..... सं०३-पृ०३५
[ग] त्रिपुराका उनाकोटि शिवलोक
(श्रीरामजी शास्त्री) ..... सं०५-पृ०३६
[घ] शुकतालतीर्थ—जहाँ भागवतकथाका शुभारम्भ हुआ
(श्रीइंदलसिंहजी भदौरिया) ..... सं०६-पृ०३७
[ङ] हिमाचलकी चिन्तपूर्णी माता
(प्रो० श्रीमती पूजाजी वशिष्ठ) ..... सं०७-पृ०३७
[च] महाकाललोकके पौराणिक महत्त्वका पुनर्जागरण
(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत) ..... सं०८-पृ०२६
[छ] रामेश्वरम्का विभीषण-मन्दिर
(श्रीभानदेवजी) ..... सं०९-पृ०३६
[ज] मिथिलाके प्राचीन भैरवस्थान एवं हनुमान्-मन्दिर
(प्रो० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', एम०ए०,
पी-एच०डी०, डी० लिट०) ..... सं०१०-पृ०३२
[झ] आदिशक्ति माँ महामाया देवीकी नगरी रतनपुर
(डॉ० श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा) ..... सं०११-पृ०३४
[ञ] ओरछाधाम—जहाँ विराजे हैं राजाराम
(श्रीइन्दल सिंहजी भदौरिया) ..... सं०१२-पृ०२७
५०- दर्शनीय आश्चर्य (साधुवेशमें एक पथिक) ..... सं०४-पृ०१२
५१- 'दीनबन्धु, वाही दिना, देह देत, सब देत'
(श्रीसत्यदर्शनजी मिश्र) ..... सं०८-पृ०३४
५२- दृष्टिका भेद ..... सं०११-पृ०१३
५३- धार्मिक व्रतोंसे आरोग्यकी प्राप्ति
(डॉ० श्रीकेशव रघुनाथजी कान्हेरे) ..... सं०८-पृ०३७
५४- नरसीकी हुण्डी (श्रीहरिकृष्णजी नीखरा) ..... सं०९-पृ०११
५५- नामका आश्रय (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') ..... सं०५-पृ०३८
५६- नाम-साधनाके सूत्र
(मानस केसरी पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र 'रामायणी') .. २१
५७- **नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार—**
[क] निष्काम भिखारी ..... सं०२-पृ०११
[ख] सब फल ईश्वर ही देता है ..... सं०३-पृ०१३
[ग] भगवान्का स्मरण कैसे करें ? ..... सं०४-पृ०१३
[घ] भक्तिके साधन ..... सं०५-पृ०१०
[ङ] भगवान् श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी ..... सं०६-पृ०१०
[च] भक्ति-सुधा-सागर-तरंग ..... सं०७-पृ०११
[छ] भीख ..... सं०८-पृ०११
[ज] एक लालसा ..... सं०९-पृ०१०
[झ] फुरसत निकालो ..... सं०१०-पृ०९
[ञ] सत्पुरुष कौन ? ..... सं०११-पृ०१२
[ट] वह दिन कब आयेगा ..... सं०१२-पृ०११
५८- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी
वार्षिक विषय-सूची ..... सं०१२-पृ०४६
५९- **पढ़ो, समझो और करो—**
सं०२-पृ०४७, सं०३-पृ०४७, सं०४-पृ०४७, सं०५-पृ०४७, सं०६-पृ०४६, सं०७-पृ०४५, सं०८-पृ०४५, सं०९-पृ०४६, सं०१०-पृ०४६, सं०११-पृ०४७, सं०१२-पृ०४२
६०- परम भागवत राजा अम्बरीष (श्रीलालजी मिश्र) ... सं०२-पृ०३६
६१- परमात्मप्राप्तिमें बाधक है—अहंकार
(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) ..... सं०९-पृ०२२
६२- पारस्परिक द्वेषका परिणाम ..... सं०११-पृ०१७
६३- पुण्यसलिला शिप्राका माहात्म्य
[प्रस्तुति—प्रो० श्री बी० के० कुमावतजी] ..... सं०३-पृ०३८
६४- पुरुषार्थ और कृपा
(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ..... सं०९-पृ०२८
६५- पूज्य हैं सभी देवता
(महामहोपाध्याय देवर्षि श्रीकलानाथजी शास्त्री) सं०१०-पृ०२७
६६- प्रेमके अवतार प्रभु श्रीराम
(डॉ० श्रीआदित्यजी शुक्ल) ..... सं०७-पृ०१९
६७- **प्रेरक-प्रसंग—**
[क] सादा जीवन, उच्च विचार ..... सं०३-पृ०१५
[ख] सबमें राम ..... सं०३-पृ०२१
[ग] डॉक्टर नहीं, पण्डित ..... सं०३-पृ०२५
[घ] कर्तव्य-पालन ..... सं०३-पृ०२८
[ङ] गलत कामसे बचनेका उपाय ..... सं०३-पृ०३२
[च] महामनाकी विवेकशीलता ..... सं०३-पृ०३४

[छ] असत्‌की कमाई नष्ट हो जाती है ..... सं०४-पृ०११
[ज] माँका सपना (श्रीमती आशा सिंह) ..... सं०६-पृ०४०
[झ] संकटमें भी अतिथि-सत्कार ..... सं०१२-पृ०१०
६८- बिना अपराधके दण्ड देनेका फल ..... सं०११-पृ०१५
६९- **बोधकथा—**
[क] कष्टोंका मूल्य ..... सं०२-पृ०३५
[ख] सच्चा सन्त ..... सं०२-पृ०३८
[ग] मृत्युसे कौन बचा ? ..... सं०४-पृ०२१
[घ] लोभ—विनाशका कारण ..... सं०४-पृ०२७
[ङ] सिद्धियोंका आधार—वाक्-संयम ..... सं०४-पृ०४१
[च] आश्रम पहले ही बन गया ..... सं०४-पृ०४३
[छ] भिक्षाका उपयोग ..... सं०८-पृ०१०
[ज] गरीबके दानकी महिमा ..... सं०८-पृ०१३
[झ] मूल्य उपयोगिताका होता है ..... सं०८-पृ०१६
[ञ] परमेश्वर हमारे अन्दर है ..... सं०८-पृ०२०
[ट] संयम ही स्वास्थ्यकी कुंजी है ..... सं०८-पृ०२३
[ठ] संस्कारोंकी रक्षा ..... सं०१२-पृ०१२
[ड] मातृभूमिकी सेवा ..... सं०१२-पृ०१३
[ढ] पीड़ितकी सेवा करना ही सच्ची उपासना है .... सं०१२-पृ०२४
७०- **ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका—**
[क] भक्त और भगवान्‌का कल्याणकामी विनोद .. सं०२-पृ०८
[ख] महाभारतकी महिमा ..... सं०३-पृ०९
[ग] ईश्वरकी दया और उनका प्रेम ..... सं०४-पृ०९
[घ] भगवत्प्राप्तिके दस उपाय ..... सं०५-पृ०८
[ङ] महात्मा बननेके मार्गमें मुख्य विघ्न ..... सं०६-पृ०८
[च] श्रीरामका महत्त्व ..... सं०७-पृ०८
[छ] श्रीवाल्मीकीय रामायण सच्चा इतिहास है ..... सं०८-पृ०९
[ज] महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव ..... सं०९-पृ०८
[झ] परमात्माकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय ..... सं०१०-पृ०८
[ञ] राजा हरिश्चन्द्रकी धर्मनिष्ठा ..... सं०११-पृ०८
[ट] सर्वस्व देकर भी भगवत्प्रेम प्राप्त करें ..... सं०१२-पृ०८
७१- **ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज—**
[क] सकामनापूर्तिका प्रलोभन ही पराधीनता ..... सं०२-पृ०१३
[ख] साधकोंके लिये करणीय ..... सं०३-पृ०१४
[ग] श्रीराम-तत्त्व ..... सं०४-पृ०१४
[घ] साधकोंको उद्‌बोधन ..... सं०५-पृ०११
[ङ] प्रेमयोग ..... सं०६-पृ०११
[च] कर्तव्यपरायणता ..... सं०७-पृ०१२
[छ] दोष-दर्शनका त्याग ..... सं०८-पृ०१२
[ज] भगवद्भक्तिका स्वरूप एवं माहात्म्य ..... सं०९-पृ०१२
[झ] निष्कामकर्तव्यताकी साधना ..... सं०१०-पृ०१०
[ञ] प्रार्थनाका स्वरूप ..... सं०११-पृ०१४
७२- भक्तिके चरम भावोंसे ब्रह्मकी प्राप्ति
(श्रीहनुमानप्रसादजी अग्रवाल) ..... सं०११-पृ०२४
७३- भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य
(श्रीदिलीपजी देवनानी) ..... सं०२-पृ०१६
७४- भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना ..... सं०१०-पृ०४१
७५- भगवान् कहाँ हैं ? मानव-जीवनमें सुख-दुःख
(श्रीसीतारामजी) ..... सं०३-पृ०२०
७६- भगवान् शिव सबका मंगल करें ..... सं०२-पृ०२७
७७- भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान ..... सं०१०-पृ०१७
७८- भजन किसका करें ? (ब्रह्मलीन जगद्‌गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज) ..... सं०६-पृ०१६
७९- 'भलो भलाइहि पै लहइ'
(पूज्य स्वामी श्रीसंवित् सुबोधगिरिजी महाराज) ... सं०६-पृ०२५
८०- भवसागरकी नाव (वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा) सं०८-पृ०१५
८१- भारतके बारह प्रधान देवी-विग्रह और उनके स्थान . सं०२-पृ०४१
८२- भारतवर्ष समस्त भूमण्डलकी नाभि है
(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) सं०६-पृ०९
८३- 'भोग' और 'प्रसाद'
(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ... सं०३-पृ०२६
८४- **मनन करने योग्य—**
सं०२-पृ०५०, सं०३-पृ०५०, सं०४-पृ०५०, सं०५-पृ०५०, सं०६-पृ०४९, सं०७-पृ०४८, सं०८-पृ०४८, सं०९-पृ०४९, सं०१०-पृ०४९, सं०११-पृ०५०, सं०१२-पृ०४५
८५- मनसे किया त्याग ही त्याग है
(स्वामी श्रीसंवित् सुबोधगिरिजी) ..... सं०५-पृ०१६
८६- महाकालस्तुतिः ..... सं०८-पृ०२७
८७- माता-पिताकी सेवाकी महिमा ..... सं०११-पृ०९
८८- मातृपितृ-ऋण चुकानेका सरल मार्ग है श्राद्ध
(प्रो० श्रीराधेमोहन प्रसादजी) ..... सं०७-पृ०२५
८९- 'माधौ! नैक हटकौ गाइ'
(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ... सं०५-पृ०३४
९०- माननीय प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदीजीका सम्बोधन [गीताप्रेस-शताब्दीवर्ष-समारोहका समापन-भाषण] ..... सं०८-पृ०४९
९१- मानव-देहकी सार्थकता
(डॉ० श्रीफूलचन्दप्रसादजी गुप्त) ..... सं०३-पृ०२९
९२- मानसमें हरिनाम (वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा) . सं०११-पृ०२५
९३- मृत्युके पश्चात् (श्रीप्रशान्तकुमारजी रस्तोगी) ..... सं०९-पृ०२४
९४- 'मैं' नहीं 'तू' (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त) ... सं०९-पृ०२६
९५- 'मैं भगतन को दास, भगत मेरे मुकुट मणि' ..... सं०७-पृ०१५
९६- मोटापा (वजन) कैसे घटायें ?
(योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द') ..... सं०९-पृ०३९
९७- 'मोह छाँड़ मन मीत'
(श्रीभगवान लालजी शर्मा 'प्रेमी') ..... सं०७-पृ०२२
९८- मौन-साधना
(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) ..... सं०२-पृ०१७
९९- यह 'और' 'और' की तृष्णा!
(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ..... सं०६-पृ०२९
१००- यह 'और' 'और' की तृष्णा!
(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ..... सं०७-पृ०३१
१०१- योगिराज कल्याण स्वामीकी अद्भुत गुरुभक्ति
(सौ० मधुवन्ती मकरन्दजी मराठे) ..... सं०९-पृ०२१
१०२- रसोईघर अन्नपूर्णामाताका मन्दिर है (गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज) . सं०५-पृ०९
१०३- 'रसो वै सः' (मानसकेसरी पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०) ..... सं०६-पृ०२२
१०४- रामकथाके वक्ता एवं श्रोता
(श्रीशिवदत्तजी पाण्डेय, साहित्याचार्य) ..... सं०३-पृ०१६
१०५- रामचरितमानसके दोष ..... सं०१०-पृ०३३

१०६- रामनामके गायक—गोस्वामी तुलसीदास
(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत) ..... सं०११-पृ०३०
१०७- 'राम नाम मनिदीप धरु'
(श्रीरामकृष्ण रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज') . सं०६-पृ०१७
१०८- लक्ष्मणजीका अलौकिक सेवाभाव
(श्रीविष्णुजी पटवारी) ..... सं०२-पृ०२०
१०९- 'लू' से बचनेके उपाय
(डॉ० श्रीअनिलकुमारजी गुप्ता) ..... सं०६-पृ०३६
११०- वनस्पति-सम्पदाको संरक्षित करते हमारे तीज-त्यौहार
(श्रीमती शारदा नरेन्द्र मेहता) ..... सं०१०-पृ०१९
१११- विश्वयोग—महायोगीकी ही जलायी ज्योति
(डॉ० श्रीकन्हैयासिंहजी) ..... सं०३-पृ०३७
११२- वृद्धजनोंहेतु सुखसे जीनेकी कला
(श्रीमनराखन लालजी शर्मा) ..... सं०११-पृ०२९
११३- वृद्धावस्था—अभिशाप नहीं, अपितु वरदान है
(श्रीराधेश्यामजी चाण्डक) ..... सं०८-पृ०२९
११४- वृन्दावनसेवी साधकोंकी दृष्टिमें श्रीवृन्दा
(डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा) ..... सं०१२-पृ०१९
११५- वेदपुराणान्तर्गत पर्यावरण-संरक्षण-व्यवस्था
(डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव) ..... सं०५-पृ०३०
११६- वेशका सम्मान ..... सं०११-पृ०३९
११७- वैराग्यकी उत्पत्ति
(मानस-मर्मज्ञ परम पूज्य श्रीरामकिंकरजी महाराज)सं०६-पृ०१४
११८- वैराग्यभावका आधान (श्रीमती डॉ० रंजनाजी शर्मा)सं०४-पृ०३५
११९- व्यवहारकी शुद्धिसे परमार्थकी सिद्धि (ब्रह्मलीन पूज्य
स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्द गिरिजी महाराज) ..... सं०३-पृ०१०
१२०- **व्रतोत्सव-पर्व—**
चैत्रमासके व्रत-पर्व ..... सं०२-पृ०४३
वैशाखमासके व्रत-पर्व ..... सं०३-पृ०४५
ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व ..... सं०४-पृ०४५
आषाढ़मासके व्रत-पर्व ..... सं०५-पृ०४५
श्रावणमासके व्रत-पर्व ..... सं०६-पृ०४४
श्रावणमासके व्रत-पर्व ..... सं०७-पृ०४१
भाद्रपदमासके व्रत-पर्व ..... सं०८-पृ०४२
आश्विनमासके व्रत-पर्व ..... सं०९-पृ०४४
कार्तिकमासके व्रत-पर्व ..... सं०१०-पृ०३६
मार्गशीर्षमासके व्रत-पर्व ..... सं०१०-पृ०३७
पौषमास के व्रत-पर्व ..... सं०११-पृ०४४
माघमासके व्रत-पर्व ..... सं०१२-पृ०३७
फाल्गुनमासके व्रत-पर्व ..... सं०१२-पृ०३८
१२१- शराब आदिके दुष्प्रभावका रहस्य
(श्रीकमलकान्तजी तिवारी) ..... सं०७-पृ०९
१२२- शाक्त दर्शन एवं शक्ति-उपासना
(प्रो० श्रीरामराजजी उपाध्याय) ..... सं०२-पृ०२५
१२३- शिव-तत्त्व—एक विमर्श
(पूज्य स्वामी श्रीसंवित् सोमगिरिजी महाराज) ..... सं०२-पृ०३९
१२४- शिवलिंगका तात्पर्य और रहस्य
(डॉ० श्रीरामलखन सिंहजी) ..... सं०९-पृ०१५
१२५- श्राद्धसारसर्वस्व सप्तार्चिस्तोत्र अथवा पितृ-स्तुति ... सं०११-पृ०४२
१२६- श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें रामभक्तिका स्वरूप
(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय) ..... सं०३-पृ०३३
१२७- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना ..... सं०१०-पृ०३९
१२८- श्रीमद्भगवद्गीताकी विलक्षणता एवं सहजता
(श्रीसुरेशजी शर्मा) ..... सं०५-पृ०२३
१२९- श्रीमद्भागवतकी 'समुद्रमन्थन'-कथाका तात्त्विक-विमर्श
(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ..... सं०११-पृ०१८
१३०- श्रीमद्भगवद्गीताके माध्यमसे भगवद्दर्शन
(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त) ..... सं०९-पृ०१७
१३१- श्रीयमुनाजी—परिचय एवं माहात्म्य
(श्रीशरदजी अग्रवाल) ..... सं०४-पृ०३१
१३२- श्रीराधामाधव-चिन्तन
(डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा) ..... सं०५-पृ०२७
१३३- श्रीरामका रूप एवं शील
(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत) ..... सं०५-पृ०२४
१३४- श्रीरामके चरित्रकी प्रासंगिकता
(डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त) ..... सं०१२-पृ०१५
१३५- श्रीरामचरितमानसमें श्रीकृष्ण-कथाकी प्रवाहित पावनधारा
(श्रीइंदल सिंहजी भदौरिया) ..... सं०८-पृ०३९
१३६- श्रीरामचरितमानस—साहित्य ग्रन्थ ही नहीं, मन्त्रोंकी खान भी
(डॉ० श्रीरमेश नारायणजी पुरोहित) ..... सं०२-पृ०३१
१३७- सखा-सत्कार ..... सं०८-पृ०२४
१३८- सच्ची प्रार्थनाकी महिमा (श्रीराघवदासजी) ..... सं०१०-पृ०१५
१३९- सत्य (महात्मा गाँधी) ..... सं०८-पृ०८
१४०- सनातन धर्म (श्रीविश्वम्भर प्रसादजी पिडिहा) ..... सं०६-पृ०२१
१४१- सनातन-धर्मके ज्ञान, ग्रहण और प्रसारकी
आवश्यकता **[ श्रीभाईजी ]** ..... सं०१२-पृ०२२
१४२- **सम्पादकीय—** सं०२-पृ०५, सं०३-पृ०५, सं०४-पृ०५, सं०५-पृ०५, सं०६-पृ०५, सं०७-पृ०५, सं०८-पृ०५, सं०९-पृ०५, सं०१०-पृ०५, सं०११-पृ०५, सं०१२-पृ०५
१४३- **साधकोंके प्रति—** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)
[ क ] अविनाशी रस ..... सं०२-पृ०१४
[ ख ] पापका बाप ..... सं०३-पृ०१५
[ ग ] विचार करें ..... सं०४-पृ०१५
[ घ ] सुगम साधन ..... सं०५-पृ०१२
[ ङ ] सब कुछ भगवान्‌का ही रूप है ..... सं०६-पृ०१२
[ च ] भगवन्नाममें शक्ति ..... सं०७, पृ०१३
[ छ ] सन्त-संगकी महिमा ..... सं०८-पृ०१४
[ ज ] बुद्धिमान् बनजारा ..... सं०९-पृ०१४
[ झ ] मूर्तिपूजाकी आवश्यकता ..... सं०१०-पृ०११
[ ञ ] भगवान् प्रेमके भूखे हैं ..... सं०११, पृ०१६
[ ट ] अमृत-बिन्दु ..... सं०१२-पृ०१४
१४४- 'सीय राममय सब जग जानी'
(श्रीसनातनकुमारजी वाजपेयी 'सनातन') ..... सं०४-पृ०२५
१४५- सुन्दरकाण्डमें सामाजिक मर्यादाके सूत्र
(श्रीमती आशाजी मेहरोत्रा) ..... सं०९-पृ०३२
१४६- सुन्दरकाण्डमें हनुमान्—निष्काम कर्मयोगी
(डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी अग्रवाल) ..... सं०७-पृ०२७
१४७- **सुभाषित-त्रिवेणी—**
[ क ] पण्डितके लक्षण ..... सं०२-पृ०४४
[ ख ] भगवान् सर्वव्यापक हैं ..... सं०३-पृ०४४
[ ग ] पाप और पुण्यका परिणाम ..... सं०४-पृ०४४
[ घ ] धर्मका त्याग न करे ..... सं०५-पृ०४४

[ङ] मधुर वाणीसे लाभ ..... सं०६-पृ०४३
[च] इन्द्रियोंके नियन्त्रणसे लाभ ..... सं०७-पृ०४३
[छ] जीवलोकके सुख ..... सं०७-पृ०४१
[ज] संघ-शक्ति ..... सं०९-पृ०४३
[झ] दिव्य लोकोंके लिये मार्ग ..... सं०१०-पृ०३८
[ञ] कुलीन व्यक्तियोंके गुण ..... सं०११-पृ०४५
[ट] उत्तम मित्रके लक्षण ..... सं०१२-पृ०३६
१४८- सोऽहं-साधना ..... सं०१०-पृ०२८
१४९- **सन्त-चरित—**
[क] दादूपंथी संत श्रीसालिगरामजी (प्रो० श्रीरोहितजी नारा) ..... सं०३-पृ०४०
[ख] अपरिग्रही सन्त स्वामी श्रीप्रकाशानन्दजी (श्रीभरतजी दीक्षित) ..... सं०४-पृ०३९
[ग] गुजरातके भक्तकवि सन्त श्रीकागबापू (श्रीरतिभाईजी पुरोहित) ..... सं०६-पृ०३९
[घ] बन्धु महान्ति ..... सं०७-पृ०३९
[ङ] भक्त बालीग्रामदास ..... सं०८-पृ०३१
[च] ब्रह्मचारी श्रीमहेन्द्र महाराज (डॉ० श्रीगोपालप्रसादजी पाठक, एम०ए०, पी-एच०डी०) ..... सं०९-पृ०४१
[छ] श्रीगुरु निवृत्तिनाथजी महाराज (श्रीलक्ष्मीनारायणजी गर्दे) ..... सं०१०-पृ०३४
[ज] महाभागवत ज्योतिपंत ..... सं०११-पृ०३७
[झ] भक्त जोग परमानन्द ..... सं०१२-पृ०३२
१५०- सन्तवाणी ..... सं०१०-पृ०९
१५२- सेवा (श्रीरूपचन्दजी शर्मा) ..... सं०११-पृ०२७
१५३- संसारका वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) ..... सं०१२-पृ०९
१५४- संसार भावमय है (गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज) ..... सं०९-पृ०९
१५५- स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके अन्तिम उद्गार ..... सं०१२-पृ०१३
१५६- हिन्दूका वैशिष्ट्य है हिन्दुत्व (प्रो० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम') ..... सं०२-पृ०३३
१५७- हिन्दू संस्कृतिकी एक झलक ..... सं०५-पृ०३३
१५८- त्रिपुरवधका आध्यात्मिक रहस्य (पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विद्यानिधि) ..... सं०१२-पृ०१७

## पद्य-संकलन

१- 'अब तो आँखें खोल' (आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश') ..... सं०१२-पृ०३३
२- अभिलाषा (श्रीबृजमोहनजी बेरीवाला) [प्रेषक—श्रीगौरांगजी अग्रवाल] ..... सं०४-पृ०१७
३- अमृतोज्ज्वला गंगा (प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र). ..... सं०८-पृ०२५
४- गीता-सन्देश (राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त) ..... सं०९-पृ०१८
५- चिन्मयी गंगा! (प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्व कुलपति) .. सं०६-पृ०२०
६- 'पधारो नाथ! पूजा को' (वैद्य श्रीलक्ष्मणप्रसादजी भट्ट दीक्षित) ..... सं०१०-पृ०३१
७- परोपकार-महिमा ..... सं०७-पृ०१४
८- रामनाम सुखधाम (आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश') ..... सं०९-पृ०२७
९- शिव-स्तुति (श्रीशिवजी मृदुल) ..... सं०११-पृ०२३
१०- 'सबसे ऊँचा धर्म है गोसेवा का काम' (श्रीराजेन्द्रजी जैन) ..... सं०११-पृ०११
११- सरस्वती-वन्दना (श्रीबालकृष्णजी गर्ग) ..... सं०२-पृ०२४
१२- संगति-महिमा ..... सं०७-पृ०१४

## संकलित

१- भगवती श्रीसरस्वती ..... सं०२-पृ०३
२- दिव्य मणिद्वीपमें भगवती भुवनेश्वरी ..... सं०३-पृ०३
३- श्रीहनुमत्-ध्यान ..... सं०४-पृ०३
४- भगवान्‌की लीलाओंके गायक—देवर्षि नारद ..... सं०५-पृ०३
५- माता कौसल्याकी गोदमें शिशुरूप भगवान् श्रीराम ..... सं०६-पृ०३
६- आनन्दघनकी खीझ ..... सं०७-पृ०३
७- शिवताण्डव ..... सं०८-पृ०३
८- माता अन्नपूर्णासे प्रार्थना ..... सं०९-पृ०३
९- 'जय जय जगजननि देवि' ..... सं०१०-पृ०३
१०- सूर्य-स्तुति ..... सं०११-पृ०३
११- कालभैरव-दर्शन-महिमा ..... सं०१२-पृ०३

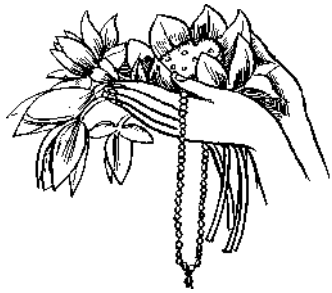

# बहुप्रतीक्षित श्रीरामाङ्कका पुनर्प्रकाशन

कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें सन् 1972 में '**श्रीरामाङ्क**'का प्रकाशन किया गया था। वर्षोंसे 'श्रीरामाङ्क'के पुनर्प्रकाशनका सुझाव पाठक महानुभावोंका आता रहा है। भगवान् श्रीराम भारतीय अध्यात्म एवं संस्कृतिके आधार-स्तम्भ हैं, इनकी आराधना प्रत्येक आस्तिकके घरमें होती है। **श्रीअयोध्याधाममें भगवान् श्रीराम बहुप्रतीक्षित अपने नवनिर्मित भवनमें 22 जनवरी 2024 को प्रतिष्ठापित होने जा रहे हैं।** पाठक महानुभावोंकी माँगको देखते हुए इस सुअवसरपर **श्रीरामाङ्क**के पुनर्प्रकाशनका निर्णय लिया गया है। इस अंकमें भगवान् श्रीरामके विभिन्न आदर्शों, उनके प्रभाव, महत्त्व आदिपर प्रकाश डालनेका प्रयास किया गया है। इसमें भगवान् श्रीरामके परिकरोंका संक्षिप्त परिचय एवं प्रसिद्ध रामभक्तोंके सुन्दर आख्यान भी दिये गये हैं; साथ ही श्रीरामसम्बन्धी अनुष्ठान, रामकवच, सीताकवच, भरतकवच, लक्ष्मणकवच, शत्रुघ्नकवच, हनुमत्कवच आदि बहुतसे स्तोत्र भी दिये गये हैं। अधिक-से-अधिक सामग्री उपलब्ध हो सके, इसके लिये फरवरी एवं मार्चके अंकोंकी सामग्री भी इस अंकमें दे दी गयी है। आशा है यह अंक सभीके लिये उपयोगी और संग्रहणीय होगा।

## गीताप्रेससे प्रकाशित—चित्रमय श्रीरामचरितमानस एवं सन्दुरकाण्ड

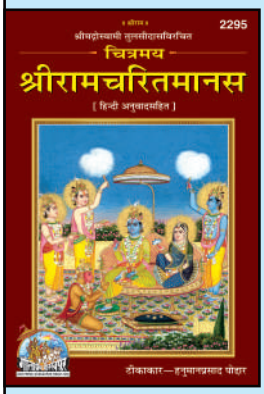


**चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सटीक ( कोड 2295 ) ग्रन्थाकार [ चार रंगोंमें ]**—श्रीरामचरितमानसका स्थान जगत्के साहित्यमें निराला है। साहित्यके सभी रसोंका आस्वादन करानेवाला तथा गार्हस्थ्य-जीवन, आदर्श पातिव्रतधर्म, भ्रातृधर्मके साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य तथा सदाचारकी शिक्षा देनेवाला—सबके लिये समान उपयोगी है। भगवान् श्रीरामकी लीलाका दर्शन करानेके उद्देश्यसे 300 से अधिक लीलाओंके मनमोहक रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹1600, **डाकखर्च फ्री।**

**चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड—मूल ( कोड 2311 ) ग्रन्थाकार [ चार रंगोंमें ]**—श्रीरामचरितमानसका 'सुन्दरकाण्ड' अपनी विशिष्टताके लिये प्रसिद्ध है। इसमें वर्णनीय सब कुछ 'सुन्दर' है। सुन्दरकाण्डमें राम सुन्दर हैं,कथाएँ सुन्दर हैं, सीता सुन्दर हैं। सुन्दरमें क्या सुन्दर नहीं है? इसके पाठसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। श्रीहनुमान्जीकी लीलाके 70 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹150, डाकखर्च ₹50

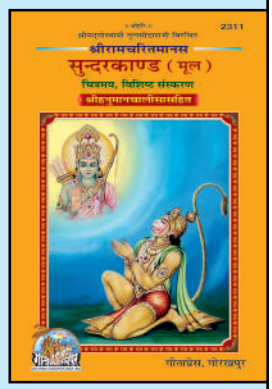


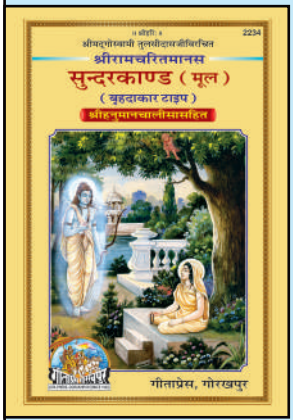


**सुन्दरकाण्ड [ मूल, ग्रन्थाकार ] ( कोड 2234 )**—सन्त शिरोमणि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासविरचित श्रीरामचरितमानस एक प्रासादिक ग्रन्थ है। इसमें पाँचवाँ सोपान सुन्दरकाण्ड सर्वश्रेष्ठ अंश है। प्रस्तुत पुस्तक **बृहदाकार टाइपमें चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर** प्रकाशित किया गया है। इसमें श्रीहनुमानचालीसा, श्रीहनुमत्-स्तवन, श्रीरामस्तुति और अन्तमें श्रीहनुमान्जीकी एवं श्रीरामायणजीकी आरती दी गयी है। मूल्य ₹ 80, डाकखर्च ₹ 40, **( कोड 2284 )** गुजरातीमें भी उपलब्ध।

**'श्रीरामचरितमानस'के विभिन्न संस्करण विभिन्न भाषाओंमें भी उपलब्ध**

प्र० ति० 20-11-2023
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

## ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

'कल्याण'का सन् 2023 दिसम्बर (कल्याण-वर्ष 97)-का बारहवाँ-अङ्क आपके हाथमें है, इस अंकके साथ ही वर्षका समापन हो जायगा। आगामी वर्ष 2024 ई० (कल्याण-वर्ष 98)-का विशेषाङ्क

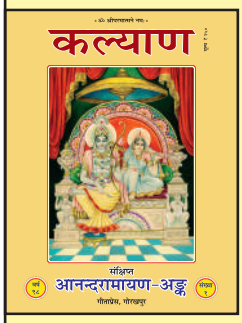


**'संक्षिप्त आनन्दरामायण-अङ्क'** शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इसकी कथाएँ अत्यन्त नवीन, मनको आह्लादित करनेवाली तथा भक्तिको बढ़ानेवाली हैं। इसमें भगवान् श्रीरामद्वारा भारतवर्षके सभी तीर्थोंकी यात्रा, अनेकानेक अश्वमेध यज्ञोंका सम्पादन, राम-लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा लव-कुश आदिकी वंश-परम्पराका वर्णन, श्रीरामकी दिग्विजय-गाथा,आदि इस ग्रन्थकी अनमोल निधियाँ हैं। भगवान्‌की विविध स्तुतियाँ, मन्त्र, अनुष्ठान, रामाष्टोत्तरशतनाम, रामसहस्रनाम, रामस्तवराज, रामकवच, लक्ष्मणकवच, सीताकवच, शत्रुघ्न-भरतके कवच, हनुमत्कवच तथा रामनामकी महिमा इसमें विशेष रूपसे प्रतिपादित है। घर-घर पढ़ा जानेवाला श्रीरामरक्षास्तोत्र इसी ग्रन्थमें आया है। सम्पूर्ण आनन्दरामायण नौ काण्डों—सारकाण्ड, यात्राकाण्ड, यागकाण्ड, विलासकाण्ड, जन्मकाण्ड, विवाहकाण्ड, राज्यकाण्ड, मनोहरकाण्ड तथा पूर्णकाण्डमें विभक्त है। आशा है यह अङ्क पूर्वप्रकाशित विशेषाङ्कोंकी भाँति सभीके लिये संग्राह्य एवं उपयोगी होगा।

**एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे**

**पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे**

**Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।**

**09235400242 / 244** फोन एवं **8188054404, 9648916010 WhatsApp** भी कर सकते हैं।

**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005**

## माघ-मेला प्रयाग (सन् 2024)

श्रद्धालुओंको चाहिये कि पौष शुक्ल पूर्णिमा (25 जनवरी, 2024 ई०)-से माघ शुक्ल पूर्णिमा (24 फरवरी, 2024 ई०)-तक पूरे एक मासतक कल्पवासी बनकर प्रयागमें रहें और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नित्यप्रति पुण्यतोया त्रिवेणीमें स्नान-लाभ करते हुए धर्मानुष्ठान, सत्सङ्ग तथा दान-पुण्य करें—

### स्नानकी प्रमुख तिथियाँ

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1-पौष शुक्ल 4 | सोमवार | 15 जनवरी, 2024 | मकर-संक्रान्ति। |
| 2-पौष शुक्ल 15 | गुरुवार | 25 जनवरी, 2024 | माघ-स्नानारम्भ। |
| 3-माघ कृष्ण 14 | शुक्रवार | 09 फरवरी, 2024 | मौनी-अमावस्या। |
| 4-माघ शुक्ल 05 | बुधवार | 14 फरवरी, 2024 | वसन्तपंचमी। |
| 5-माघ शुक्ल 07 | शुक्रवार | 16 फरवरी, 2024 | अचलासप्तमी, रथसप्तमी। |
| 6-माघ शुक्ल 15 | शनिवार | 24 फरवरी, 2024 | माघीपूर्णिमा। |

**माघ-मेला प्रयाग क्षेत्रमें विशेष पुस्तक-स्टॉल लगानेका विचार है।**

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)